
इकाई 25 भूमि : सुलभता, नियंत्रण तथा प्रबंधन

इकाई की रूपरेखा

25.0 उद्देश्य

25.1 प्रस्तावना

25.2 भारत में भूमि के प्राकृतिक-भौगोलिक अभिलक्षण

25.3 भूमि का उपयोग और उससे संबंधित पारिस्थितिक समस्याएँ

25.3.1 चरागाह और पशुपालन पर निर्भर लोगों की समस्याएँ

25.3.2 बंजर भूमि और उसका ग्रामीण जनसंख्या पर प्रभाव

25.3.3 लोगों के जीवन-निर्वाह का प्रमुख साधन – फसली भूमि

25.4 भूमि की सुलभता और लोगों के द्वारा उसका नियंत्रण एवं प्रबंधन

25.4.1 काश्तकारी पर लोगों का असमान अधिकार

25.4.2 भूमि सुधार के लिए कानूनी उपाय, किसानों तथा ज़मीन के उचित उपयोग हेतु इन उपायों के निहितार्थ

25.5 भूमि सुधारों के फलस्वरूप कृषि मज़दूरों का उदय व अन्य प्रभाव

25.6 भारत में भूमि और शहरी विकास

25.7 ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में भूमि के नियंत्रण और प्रबंधन में लोगों की भागीदारी

25.7.1 कृषक आंदोलन

25.7.2 शहरी क्षेत्रों में भूमि के उपयोग से संबंधित समस्याओं के प्रति लोगों की जागरूकता

25.8 सारांश

25.9 शब्दावली

25.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

25.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपके लिए संभव होगा :

- भारत में भूमि के प्राकृतिक लक्षणों का वर्णन करना;
- फसली भूमि, बंजर भूमि तथा चरागाहों से जुड़ी पारिस्थितिकीय समस्याओं और भूमि उपयोग के विन्यास का वर्णन करना;
- भूमि सुधार के लिए किए गए कानूनी उपायों और भूमि सुलभता की प्रकृति को रेखांकित करना;
- कृषि मज़दूरों की संख्या वृद्धि संबंधी व्याख्या करना;
- भारत में नगरीय विकास से भूमि उपयोग को जोड़ना; और
- नगरीय तथा ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि के नियंत्रण तथा प्रबंधन में जनसाधारण की भागीदारी के रूप का विश्लेषण करना।

25.1 प्रस्तावना

पारिस्थितिकी एवं संसाधनों पर खंड 7 की यह पहली इकाई है। जैसा कि खंड परिचय में बताया जा चुका है, हमें समय रहते चेतना है और भूमि जल तथा वन जैसे संसाधनों के क्षय को रोकना है। धरती पर जीवन का अस्तित्व तभी संभव है जब पारिस्थिकीय संतुलन को बनाए रखा जाएगा। इकाई 25 में एवं बुनियादी संसाधन रूप में भूमि पर चर्चा की गई है। किसी भी समाज में भूमि एक अति महत्वपूर्ण घटक है और भारत में तो यह लोगों की मानसिकता से एक खास ढंग से जुड़ा है। इस इकाई में दिखाया गया है कि संसाधन की उपलब्धता (availability) और लोगों की इसकी सुलभता में अंतर होता है। इसी प्रकार, संसाधन के नियंत्रण तथा प्रबंधन से जुड़ी समस्याओं की भी चर्चा की गई है। ग्रामीण भूमि के उपयोग की चर्चा अधिक की गई है क्योंकि भारत में अभी भी कृषि पर निर्भर आर्थिकी/अर्थव्यवस्था के सहारे ही अधिकांश जनता अपना भरण-पोषण करती है।

इकाई के पहले भाग में भारत में भूमि के प्राकृतिक भौगोलिक अभिलक्षणों की चर्चा की गई है। इसके बाद चरागाहों, बंजर भूमि और फसली भूमि से जुड़ी पारिस्थितिकीय समस्याओं पर लंबी चर्चा की गई है। इस चर्चा से हमें वह संदर्भ मिलता है जिसके अंतर्गत भूमि की सुलभता तथा लोगों द्वारा भूमि के नियंत्रण तथा प्रबंधन का विश्लेषण किया जा सकता है। लोगों द्वारा भूमि की सुलभता को बढ़ाने के लिए किए गए कृषि सुधारों के फलस्वरूप कृषि मजदूरों के वर्ग की उत्पत्ति हुई (पाठांश 25.5)। इस चर्चा के बाद, इकाई में भारत के नगरीय क्षेत्रों में विकास के परिप्रेक्ष्य में भूमि से जुड़े मुद्दों पर आपका ध्यान आकर्षित किया गया है। अंत में, नगरीय तथा ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि के नियंत्रण तथा प्रबंधन में लोगों की भागीदारी पर चर्चा की गई है।

25.2 भारत में भूमि के प्राकृतिक-भौगोलिक अभिलक्षण

भारतीय उपमहाद्वीप के भू-भाग को हम एक विशाल प्रायद्वीप कह सकते हैं। इसका क्षेत्रफल लगभग 32.8 करोड़ हेक्टेयर है। यह दुनिया का सातवाँ सबसे बड़ा देश है। जिसमें 100.2 करोड़ लोग रहते हैं (ये आँकड़े 2001 के हैं)। इसके प्राकृतिक भौगोलिक अभिलक्षण (देखिए चतुर्वेदी 1985 : 13-19) नीचे दिए गए हैं :

- i) भारत के उत्तर में हिमालय के शिखर हैं, जिनकी लंबाई 250 किलोमीटर है और चौड़ाई 200-400 किलोमीटर है। इस देश के समुद्रतट की लंबाई 5700 किलोमीटर है। इस विशाल प्रायद्वीप के उत्तर में गगनचुंबी पर्वत शृंखलाएँ हैं। इसका भूजल वैज्ञानिक-जलवायवी पर्यावरण विलक्षण है।
- ii) उत्तरी हिमालय पर्वत की तराई में गंगा के विशाल मैदान हैं। इन मैदानों का निर्माण हिमालय से बहकर आने वाली नदियों से हुआ है। विशाल नदियों की घाटियों में जो सैलाबी मिट्टी (alluvium) है वह कई भूगर्भीय (geological) चरणों में जमा हुई है। इन मैदानों की गहराई हजारों मीटर है। यह भारत के पूरे भूभाग का एक-चौथाई है। इन मैदानों का कुल क्षेत्रफल 652.000 वर्ग किलोमीटर है।
- iii) मध्यवर्गी उच्च भूभाग में पर्वतों, पहाड़ियों और पठार का खंड है। इस क्षेत्र के बीच-बीच में घाटियाँ हैं जो घने जंगलों से घिरी हैं (ये वन तेज़ी से समाप्त होते जा रहे हैं) यह मध्यवर्ती उच्च भूभाग पूरे भारत के भूक्षेत्र का एक-बटा-छह भाग है।
- iv) इस त्रिभुजाकार प्रायद्वीपीय पठार के अंतर्गत भारत के कुल भूभाग का एक-तिहाई से कुछ अधिक भाग आता है। इसकी ऊंचाई 300 से 900 मीटर के बीच है। इसकी सतह कहीं-कहीं विशाल मैदानों के रूप में है। इस क्षेत्र में पश्चिम से पूर्व की ओर कई नदियाँ प्रवाहित होती हैं।

25.3 भूमि का उपयोग और उससे संबंधित पारिस्थितिक समस्याएँ

ऊपर जिस भूमि भाग का विवरण प्राकृतिक लक्षणों के रूप में दिया गया है, उसे भू-उपयोग की दृष्टि से मोटे तौर पर चार हिस्सों में बाँटा जा सकता है। ये भाग हैं :

- i) चरागाह
- ii) बंजर भूमि
- iii) फसली भूमि; और
- iv) वन क्षेत्र

इनमें से वन क्षेत्र के बारे में इकाई 27 में चर्चा की गई है। प्रस्तुत इकाई में हम चरागाह, बंजर भूमि और फसली भूमि के बारे में चर्चा करेंगे। यहाँ हमारा ध्यान मुख्य रूप से भारत के भूभाग की वर्तमान स्थिति, भूभाग तक लोगों की पहुँच, नियंत्रण और प्रबंधन के कारण उठने वाली समस्याओं पर केंद्रित होगा। इस इकाई में इन तीन प्रकार के भूभागों के संबंध में जो सामग्री दी गई है वह भारत में पर्यावरण की स्थिति 1984-85, द्वितीय नागरिक रिपोर्ट (1985) और कृषि राष्ट्रीय आयोग, 1976 की रिपोर्ट (संस्करण XV) पर आधारित है। सबसे पहले हम चरागाहों की वर्तमान स्थिति पर विचार करेंगे।

25.3.1 चरागाह और पशुपालन पर निर्भर लोगों की समस्याएँ

भारत के भूभाग के सभी हिस्सों में से चरागाह की भूमि के अस्तित्व के समाप्त होने के आसार दिखाई दे रहे हैं। अब पुराने चरागाह क्षेत्रों के बहुत बड़े भाग पर नियमित रूप से खेती की जाने लगी है। यह प्रश्न उठता है कि भारत में चरागाह क्षेत्र कहाँ स्थित हैं?

भारत के सबसे अच्छे चरागाह उन क्षेत्रों में पाए जाते हैं, जहाँ 1200 मिलीमीटर से अधिक असाधारण वर्षा होती है। वहाँ साल में केवल चार महीने सूखा मौसम रहता है। चरागाह या विशिष्ट घास के मैदानों के वनस्पति समावास हिमालय के नातीशीतोष्ण जलवायु क्षेत्र में पाए जाते हैं। भारत के शेष घासी मैदान या तो स्टैपीज़ (घास के मैदान) हैं या सवाना (उष्ण कटिबंधीय घास के मैदान) हैं।

जो चरागाह क्षेत्र लगभग 1000 मीटर की ऊँचाई पर स्थित हैं वे सवाना (उष्ण कटिबंधीय घास के मैदान) में बदल जाते हैं। सवाना या उष्ण कटिबंधीय घास के मैदान उन खुले विस्तृत घास के मैदानों को कहते हैं जिनमें जहाँ-तहाँ झाड़ियाँ और पेड़ उगे हों। इन उष्ण कटिबंधीय घास के मैदानों में जहाँ पेड़ और ऊँची घास होती है वहाँ घास खाने वाले बड़े-बड़े पशु रहते हैं। स्टैपीज़ उन विस्तृत समतल मैदानों को कहते हैं जिसमें जहाँ पेड़ नहीं होते। ये पश्चिमी राजस्थान के रेतीले और लवणयुक्त मृदा के क्षेत्रों में पाए जाते हैं। यहाँ घास बहुत कम होती है और केवल कहीं-कहीं ही लकड़ी या पौधे होते हैं। स्टैपीज़ क्षेत्रों में पाए जाते हैं। यहाँ घास बहुत कम होती है और केवल कहीं-कहीं ही लकड़ी या पौधे होते हैं। स्टैपीज़ क्षेत्र में दाना या चारा केवल अल्पकालीन वर्षा के मौसम में उपलब्ध होता है।

राजस्थान के मध्यवर्ती और पूर्वी भागों में सवाना (जहाँ-तहाँ झाड़ियों और पेड़ों वाले व्यापक खुले घासीले मैदान में केवल अल्पकालीन बारिश के मौसम में उगने वाली घास के रूप में चारा मिलता है। कुछ चारा बिना बारिश के दिनों में उगने वाली घास से प्राप्त होता है। पशुओं को अत्यधिक चराने के कारण सवाना क्षेत्र में घास का सफाया हो जाता है और सवाना क्रमशः स्टैपीज़-सा लगने लगता है। उदाहरण के लिए, मध्य भारत (the Deccan) के सबसे बड़े सवाना क्षेत्र में केवल झाड़ियाँ ही हैं और यहाँ की पहाड़ियों की ढलान पर नाममात्र को ही मिट्टी बच रही है।

सवाना और स्टैपीज़ दोनों के पारितंत्र का निर्माण जनसंख्याओं के दबाव से होता है। भारत में केवल अगम्य और दूरदर्शी पहाड़ी क्षेत्रों में ही प्राकृतिक रूप से बना सवाना या स्टैपीज़ मिलता है। अधिकांशतः जानवरों और/अथवा मनुष्यों के दबाव से विविध वन पारितंत्र पेड़ों के कट जाने पर सवाना का रूप धारण कर लेते हैं। इसके बाद सवाना या उष्ण कटिबंधी घास के मैदान का सफ़ाया हो जाने पर कृत्रिम घास के मैदान (स्टैपीज़) बन जाते हैं।

सोचिए और करिए 1

भारत के नक्शे पर, पहले ऐसे क्षेत्रों को दिखाइए जहाँ उष्ण कटिबंधीय घास के मैदान (सवाना) और घास के मैदान (स्टैपीज़) अपने प्राकृतिक रूप में पाए जाते हैं फिर उन नष्ट हो गए वनों को प्रदर्शित कीजिए जो अब उष्ण कटिबंधीय घास के मैदान (सवाना) बन गए हैं तथा उन बिगड़ गए सवानाओं को प्रदर्शित कीजिए जो अब कृत्रिम स्टैपीज़ बन गए हैं।

भारत की बहुत-सी चरागाह भूमि में अब खेत की जा रही है। इसमें से केवल लगभग 1.3 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र सरकारी खातों में स्थायी चरागाह क्षेत्र के रूप में वर्गीकृत है। यदि आप भारत में पशुओं की आबादी को देखें (देखिए 25.01) तो बड़ी आसानी से समझ में आ जाएगा कि इतनी बड़ी संख्या में पशुधन को कितने अधिक चारे की जरूरत होगी। इस समय जो 1.3 करोड़ हैक्टेयर चरागाह भूमि उपलब्ध है, वह निश्चय ही उतने पशुधन के लिए पर्याप्त नहीं है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह है कि पशु आसपास के क्षेत्र में चारे की तलाश करते हैं। उन्हें परती या अकृष्य भूमियों पर जो कुछ भी खाने को मिलता है। उसे खा लेते हैं। ये पशु उष्ण कटिबंधीय वनों की भूमि पर और अकृष्य बंजर भूमि पर खाने की खोज में भटकते-फिरते हैं। ऐसा माना जाता है (देखिए सी.एस.ई. 1985 : 3) कि देश के, कुल भूभाग के आधे से अधिक भाग की लगभग सारी सुलभ वनस्पति पशु चर जाते हैं। केवल मिज़ोरम के एक जिले में और गुजरात, हरियाणा, महाराष्ट्र और पंजाब के कुछ ज़िलों में ही पर्याप्त हरा चारा उपलब्ध है। देश के बाकी हिस्सों के अधिकांश जानवर फसल की बची-खुची घास, परती भूमियों, पंचायत की बेकार पड़ी ज़मीन, नदी के किनारे की ज़मीन, बंजर भूमि और वनों में उगने वाला चारा खाते हैं। इस तरह के आहार पर जीने वाले इन जानवरों में से अधिकांश (दस में से नौ) फिर भी भूखे ही रहते हैं।

तालिका 25.1: भारत की पशुधन संख्या (लाखों में)

	1951	1961	1972	1977	1982	1991	2001
पशु	155.24	1755.6	1788.7	1800.0	1925.0	2035.0	2196.4
भैंसें	43.40	512.1	579.4	619.6	698.0	827.0	941.3
भेड़	38.96	402.2	399.9	409.1	488.0	497.0	582.0
बकरियाँ	47.00	600.8	675.2	756.2	953.0	1142.0	175.0

स्रोत : 1951 से 1961 तक के आँकड़े कृषि संबंधी राष्ट्रीय आयोग से लिए गए हैं तथा बाकी आँकड़े बारहवीं अखिल भारतीय पशुधन गणना से लिए गए हैं। इन इकाई के लिए यह तालिका अग्रवाल 1985 : 3 के सौजन्य से प्राप्त हुई; 1991, 2001 एफ.ए.ओ. मिलाएँ w.w.w.cifti.com

अत्यधिक चतुराई के कारण भूमि में रेगिस्तान की-सी स्थिति बन जाती है। इससे प्रतिक्रिया की कड़ी शुरू हो जाती है। चरागाह की भूमि के अभाव के कारण पशुओं की उत्पादकता दर में कमी हो जाती है। यह पशुपालन करने वाले लोगों के लिए आर्थिक दृष्टि से हानिप्रद होती है। इस प्रक्रिया के द्वारा पशुचारी खानाबदोश वर्गों को लाचार होकर भूमिहीन मज़दूर बन जाना

पड़ता है। स्पष्ट है कि 'अत्यधिक चराई' ही इस सबके लिए जिम्मेदार है, जानवरों की संख्या तो बहुत अधिक है, परंतु उनके खाने के लिए बहुत थोड़ी घास उपलब्ध होती है।

यद्यपि चरागाहों की भूमि का क्षेत्र कम हो गया है, फिर भी सरकारी योजना और नीति निर्माताओं तथा नीति को कार्यान्वित करने वाले अधिकारियों ने वर्तमान चरागाह क्षेत्रों की गुणवत्ता और उनकी वर्तमान मात्रा तक को कायम रखने के लिए कोई विशेष कदम नहीं उठाए हैं। इसके विपरीत, सरकार द्वारा शुरू की गई बहुत-सी सिंचाई योजनाओं से पुराने चरागाह क्षेत्र भी फसल उत्पादक भूमि में परिवर्तित हो गए हैं, लेकिन सरकार ने पशुचारियों के पुर्नवास की ओर बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया है। इसके अलावा, चरागाहों पर इतना अधिक दबावों इसलिए भी पड़ा है क्योंकि भारत में चारे के उत्पादन और प्रबंधन के संगठित और दीर्घकालिक कार्यक्रम नहीं बनाए गए हैं।

बोध प्रश्न 1

1) विशाल सिंधु-गंगा मैदान में भारत की कुल भूमि का कितना क्षेत्र आता है?

.....
.....
.....
.....

2) भारत के कुल भूभाग के उस एक-बटा-छह भाग का क्या नाम है जिसमें पर्वतों, पहाड़ों और पठारों का एक खंड है? इसके बीच-बीच में घाटियाँ हैं जिन पर घने वन हैं।

.....
.....
.....
.....

3) भूभाग के उपयोग की दृष्टि से भारत के कुल भूभाग को कितने हिस्सों में बाँटा जा सकता है?

.....
.....
.....
.....

4) सवाना (उष्ण कटिबंधीय घास के मैदान) और स्टैपीज़ (घास के मैदान) में क्या अंतर है?

.....
.....
.....
.....

25.3.2 बंजर भूमि और उसका ग्रामीण जनसंख्या पर प्रभाव

सामान्यतः खेती करने के अयोग्य या उजाड़ भूभाग को बंजर भूमि कहते हैं। यह ऐसी ज़मीन होती है जिसमें खारापन, लवणता और वायु तथा पानी का क्षरण (erosion) पाया जाता है। भारत के कुल भूभाग का लगभग एक-तिहाई हिस्सा बंजर भूभाग है। यह 10 करोड़ हैक्टेयर से भी अधिक है। हमारे इस आकलन में वनों की अवनति (degradation) के कारण बंजर भूमि में परिवर्तित क्षेत्र के आंकड़े शामिल नहीं हैं।

i) लवणता और क्षारीयता

लगभग 71.7 लाख हैक्टेयर बंजर भूमि लवणता और खारेपन से प्रभावित है। सामान्य रूप से इस प्रकार की भूमि को बंजर या खेती के अयोग्य भूमि कहा जाता है।

ii) वायु अपरदन (erosion)

वायु के अपरदन से कुल 1.293 करोड़ हैक्टेयर भूमि प्रभावित है। सही-सही आँकड़ों के अभाव में इसमें 10 से 20 लाख हैक्टेयर समुद्र तटवर्ती भूमि शामिल नहीं है, जिस पर रेत के टीले हैं। रेत के परिवर्तनशील टीलों, तटवर्ती रेत के टीले और अत्यधिक आर्द्रता के प्रतिबल के कारण हवा से भूमि का अपरदन होता है। हवा के अपरदन से राजस्थान के ग्यारह पश्चिमी ज़िले और हरियाणा व गुजरात के तीन ज़िले प्रभावित हैं।



मृदा अपरदन रोकने के लिए वृक्षारोपण

iii) जल अपरदन

पानी से भी भूमि का अपरदन होता है। उदाहरण के लिए विशाल जलराशि द्वारा अपरदन से, बीहड़ की घाटियाँ बनने से, पानी के रूक जाने से, नदी की तटवर्ती ज़मीन से, अपरदन से और झूम खेती के कारण इस प्रकार, भूमि के 7.36 करोड़ हैक्टेयर भाग का अपरदन हो चुका है। जल के द्वारा उपर्युक्त प्रकार का भू-अपरदन मध्य प्रदेश के चंबल नदी के आसपास के क्षेत्र में, उत्तर प्रदेश में यमुना और गुजरात में साबरमती और इनकी सहायक नदियों के निकटवर्ती क्षेत्रों में हुआ है। यहाँ बीहड़ तंग घाटियों के बारे में कुछ चर्चा की जा रही है।

बीहड़ तंग घाटियाँ (ravines) बनने से निकटवर्ती उपजाऊ समतल भूमि भी प्रभावित होती है। चंबल क्षेत्र में बीहड़ तंग घाटियाँ बन जाने से चंबल घाटी के ज़िलों के दस प्रतिशत से अधिक गाँव निर्जन हो गए हैं। इन गाँवों के लोग धीरे-धीरे उन गाँवों के लोग धीरे-धीरे उन गाँवों में चले गए जहाँ चंबल घाटी का प्रभाव नहीं था और जहाँ पहले ही बहुत लोग रहते थे। आपको यह जानने की उत्सुकता होगी कि बीहड़ तंग घाटियाँ कैसे बनती हैं और इनसे अपरदन कैसे होता है। बीहड़ तंग घाटियाँ और इनसे अपरदन के बारे में कोष्ठक 25.1 में कुछ रोचक तथ्य प्रस्तुत किए गए हैं, इन पर ध्यान दीजिए।

कोष्ठक 25.01

जब किसी क्षेत्र की मिट्टी पर स्थायी वनस्पतियाँ नहीं उगी होती तो उस प्रदेश में वर्षा के कारण मिट्टी बह जाती है और उनसे बीहड़ तंग घाटियाँ बनती हैं। वर्षा से गंदला पानी अपने साथ मिट्टी के कणों को बहा ले जाता है। इस जलराशि के बहाव को जलराशीय अपरदन (sheet erosion) कहते हैं। इस प्रकार, वर्षा का पानी मिट्टी में सोखे जाने के बजाय पानी में समा जाता है और छोटी-छोटी धाराओं में बहने लगता है। इन धाराओं में बहने लगता है। इन धाराओं से छोटे-छोटे परनाले (gullies) बन जाते हैं। जब छोटे परनाले बड़े हो जाते हैं तो वे बीहड़ तंग घाटी बन जाते हैं। बीहड़ तंग घाटियों में परनाले बड़े गहरे होते हैं जो एक-दूसरे के समानांतर बहते हैं। इनमें पानी के साथ बहुत-सी मिट्टी बहकर जाती है जो आसपास की पठारी भूमि के बहुत नीचे बहती है और आसपास की नदी में मिल जाती है तथा उसमें सैलाबी मिट्टी जमा हो जाती है। इस प्रकार नदी में पानी के गिरने से नदी तट में गहरे कटाव हो जाते हैं। इस प्रक्रिया से नई बीहड़ तंग घाटियाँ बन जाती हैं।

ऐसा लगता है कि भारत में प्रतिवर्ष 8000 हैक्टेयर भूमि बीहड़ तंग घाटियों में बदलती जा रही है। इन बीहड़ तंग घाटियों से अपरदन होता है और इसका प्रभाव पठार या ऊँची समतल भूमि के स्थायित्व पर पड़ता है। इस हानि के साथ-साथ चंबल घाटी की ये बीहड़ तंग घाटियाँ डाकुओं के छिपने के स्थान के रूप में भी कुख्यात हैं। उत्तर प्रदेश के इस क्षेत्र में बीहड़ों और डाकुओं के कारण किसी भी प्रकार के उत्पादन की संभावना नहीं रही। इसके कारण मध्य प्रदेश और राजस्थान को प्रति वर्ष लगभग 157 करोड़ हानि हो रही है। बीहड़ तंग घाटियों के कारण इस क्षेत्र का विकास न होने से प्रति वर्ष संभावित 30 लाख टन अनाज तथा फल, लकड़ी, चारा आदि के संभावित उत्पादन की हानि उठानी पड़ रही है। विशेषज्ञों का सुझाव है कि इस क्षेत्र के सुधार के लिए युद्ध-स्तर पर प्रक्रिया शुरू की जानी चाहिए।

iv) खनन

ऊपर जिन प्रक्रियाओं का उल्लेख किया है, उनके कारण बहुत-सी भूमि बंजर बन जाती है। इसके अलावा, खनन के कारण भी बहुत-सी कृषि-योग्य भूमि बंजर बन जाती है। खनन का प्रभाव जहाँ भूमि पर पड़ता है वहीं इससे पानी, वन और हवा भी प्रभावित होते हैं। यहाँ हमने यह बताने का प्रयास किया है कि खनन से ज़मीन पर क्या प्रभाव पड़ता है। भारत में लगभग 10-15 लाख हैक्टेयर भूभाग में खनन कार्य होता है। इसके अलावा, प्रत्येक खनन उद्योग के लिए सड़क, रेलमार्ग, राजमार्ग, खनिकों, प्रबंधकों के आवास के लिए तथा प्रशासनिक कार्यालयों, स्टॉकयार्ड और आरंभिक संसाधन संबंधी संक्रियाओं के लिए उपनगर स्थापित करने की आवश्यकता होती है। इस कारण खानों के लिए आवंटित पट्टे पर दी गई भूमि से कई गुना अधिक भूमि प्रभावित होती है।

सतही खनन की आरंभिक अवस्था में वनस्पतियों और ऊपरी मिट्टी को हटाना पड़ता है और खनन कार्य पूरा होने के बाद खनन क्षेत्र को छोड़ दिया जाता है। इसका परिणाम यह होता है जिस भूमि पर खनन किया जाता है, वह अनुपजाऊ हो जाती है। इसके अलावा, खान के आसपास की भूमि भी बंजर हो जाती है। खनन क्षेत्र में खनन का मलबा जमा होने के कारण ऐसा होता है। यह मलबा वर्षा जल के साथ बहकर आसपास के खेतों और जलधाराओं में पहुँच जाता है। सूखने पर मलबे का बचा हुआ भाग सख्त हो जाता है। ऐसी ज़मीन पर खेती करना मुश्किल हो जाता है।

v) भूमिगत खनन

भूमिगत अथवा ज़मीन के नीचे खनन के कारण भूमि पर ज्वालामुखी जैसे गड्ढे बन जाते हैं। इन खानों में से अधिक से अधिक कच्ची धातु या खनिज निकालने के बाद इन्हें छोड़ दिया जाता

है। इसके कुछ समय बाद ज़मीन को सरकारी रूप से परित्यक्त भूमि माना जाता है। यह उत्पादनशील प्रयोजनों के लिए अनुपयुक्त होती है।

vi) खनिजों का खनन

राजस्थान की शुष्क भूमि में खनिजों के खनन के कारण उस भूमि की पारिस्थितिकीय संभावनाएँ समाप्त हो जाती हैं। इससे वहाँ रेगिस्तान की-सी स्थिति बन जाती है। वनस्पतियों और ऊपर मिट्टी के हट जाने के कारण सूखी धरती अपरदन-प्रवण हो जाती है और इससे रेगिस्तान बनने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। इस प्रकार के अपरदन के कुछ उदाहरणों के लिए कोष्ठक 25.02 देखिए।

कोष्ठक 25.02

जोधपुर, उदयपुर, जयपुर और बाडमेर ज़िलों में खनन के कारण मृदा की लवणता से इन क्षेत्रों में भूमि की उर्वरता कम हो गई है। इन घाटियों में चूने के पत्थर के लिए अनियंत्रित खुली खुदाई से इस क्षेत्र पर वृक्षावरण घटकर 12 प्रतिशत रह गया है। इसके परिणामस्वरूप, चराई की भूमि समाप्त हो गई है और इस क्षेत्र में पशुओं की संख्या में कमी आ गई है।

बोध प्रश्न 2

1) भारत में वायु के अपरदन से प्रभावित क्षेत्रों के नाम लिखिए।

.....

.....

.....

.....

2) बीहड़ तंग घाटियों से होने वाले अपरदन से लोगों को किस-किस प्रकार की हानि उठानी पड़ती है, उनका उल्लेख कीजिए। चार पंक्तियों में उत्तर लिखिए।

.....

.....

.....

.....

3) खानों में खनन कार्यों से भूमि बंजर कैसे बन जाती है? चार पंक्तियों में उत्तर लिखिए।

.....

.....

.....

.....

25.3.3 लोगों के जीवन-निर्वाह का प्रमुख साधन – फसली भूमि

भारत में भूमि-उपयोग के विन्यास की यह विशेषता है कि इसके सकल बुआई-क्षेत्र में निरंतर वृद्धि हो रही है। यह वृद्धि चराई की भूमि और वन भूमि की एवज में हो रही है। उदाहरण के तौर पर, गंगा घाटी की भूमि का बहुत बड़ा क्षेत्र, पहले मुगल काल तक वनों से आच्छादित था। उस क्षेत्र में तेज़ी से बढ़ती हुई आबादी की खाद्यान्नों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए फसलों की खेती शुरू हो गई। यहाँ का सकल बुआई क्षेत्र देश के कुल क्षेत्र के लगभग आधे

भाग के बराबर है। सन् 1960-61 में सकल बुआई क्षेत्र 13.31 करोड़ हैक्टेयर था। सन् 1972-73 में यह बढ़कर 14.16 करोड़ हैक्टेयर हो गया। तदोपरान्त, सन् 1998-99 में यह बढ़कर 19.26 करोड़ हैक्टेयर हो गया (सी.एम.आई.ई. 2004)।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि दो प्रक्रियाएँ परस्पर विरोधी दिशाओं में कार्यरत हैं। इससे पूर्व आपने पढ़ा है कि भारत में भूमि के मुख्य रूप से बंजर और अकृषि-योग्य भूमियों के उद्धार द्वारा संभव हुआ है।

देश में अधिक अन्न उपजाने की स्थायी समस्या है। इसके समाधान के लिए या तो फसल-उत्पादन के क्षेत्र में वृद्धि करनी होगी या गहन खेती (अर्थात् एक ही ज़मीन पर अधिक फसलें उगाना) करनी होगी। अब चूँकि सकल बुआई क्षेत्र के और अधिक विस्तार की गुंजाइश नहीं है, इसलिए खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रति वर्ष एक से अधिक फसलें उगानी होंगी। यदि हम 1986-87 के भूमि के उपयोग के आँकड़ों पर नज़र डालें तो हमें यह बात स्पष्ट दिखाई देती है। फसल उगाने के लिए कुल 17.70 करोड़ हैक्टेयर फसल क्षेत्र है। यह क्षेत्र भी तब होता है अगर 3.7 करोड़ हैक्टेयर भूमि पर वर्ष में एक बार से अधिक बुआई की जाए। इस प्रकार, हमारे कुल फसली क्षेत्र में प्रति इकाई ज़मीन पर वर्तमान 46 प्रतिशत के ऊपर 12 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

i) भारत में जनसंख्या के भरण-पोषण के लिए भूमि की क्षमता

यह प्रश्न उठता है कि वास्तव में भारत की भूमि खाद्यान्नों का कितना उत्पादन करने में समर्थ है? अथवा, भारत की ज़मीन कितनी आबादी का भरण-पोषण करने में समर्थ है?

इस प्रश्न का उत्तर देना आसान नहीं है क्योंकि इसके लिए बहुत-से परिस्थिति विज्ञान संबंधी चरों (variables) पर विचार करना होगा तभी यह बताना संभव होगा कि कोई भूखंड कितने लोगों या प्राणियों का भरण-पोषण करने में समर्थ होगा। खाद्य और कृषि संगठन (एफ.ए.ओ.) द्वारा प्रकाशित *पोटेंशल पॉपुलेशन सपोर्टिंग कैपेसिटी ऑफ लैंड इन डेवलपिंग वर्ल्ड* (विकासशील विश्व में भूमि की जनसंख्या के भरण-पोषण की संभावित क्षमता) नामक अध्ययन की अग्रवाल (1985 : 157-162) ने विस्तारपूर्वक चर्चा की है। यह अध्ययन पूरे दस वर्षों के अध्ययन का परिणाम है। इस अध्ययन के अनुसार, सन् 1975 में भारत में उपलब्ध भूमि जितनी आबादी का भरण-पोषण करने में समर्थ थी, उससे 11.90 करोड़ लोग अधिक थे (अग्रवाल 1985 : 158)। इस अध्ययन में यह बताने का प्रयास किया गया है कि कृषि भूमि की जनसंख्या के भरण-पोषण की संभावित क्षमता को समुचित प्रबंधन द्वारा वर्तमान स्तर से साढ़े तीन गुना बढ़ाया जा सकता है।

परन्तु आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इस समय भारत में, वास्तव में, कृषि क्षेत्र में “निरंतर पूँजी निवेश पर कम उत्पादन” हो रहा है (अग्रवाल के अध्ययन में शाह द्वारा अधिक करना पड़ रहा है। 1970 से 1980 के बीच कृषि के क्षेत्र में 4.2 प्रतिशत वार्षिक की दर से निवेश में वृद्धि हुई। आशा थी कि कृषि-उत्पादन में भी इसी अनुपात में वृद्धि होगी। लेकिन, वास्तविक उत्पादन में केवल 2.3 प्रतिशत वार्षिक की दर से वृद्धि हुई। आइए, हम देखें कि कृषि उत्पादन में किस प्रकार वृद्धि होती है। वृद्धि दो तरह से होती है : (i) कृषि के क्षेत्र में; और (ii) प्रति हैक्टेयर उत्पादन में वृद्धि।

इस समय चूँकि भारत के आधे भौगोलिक क्षेत्र में पहले ही खेती हो रही है, इसलिए इसमें और अधिक वृद्धि करने की संभावना बहुत ही कम है।

कृषि उत्पादन में विशेष वृद्धि के कोई संकेत नहीं मिले हैं। वास्तव में, कृषि उत्पादन में वर्तमान वृद्धि की दर लगभग उतनी ही है जितनी जनसंख्या में वृद्धि की दर है। दूसरे शब्दों में, हम यह कह सकते हैं, कि प्रति व्यक्ति कृषि उत्पादन में वृद्धि की दर ज्यों की त्यों है।

तालिका 25.2 : एशिया के कुछ देशों में मरुस्थलीकरण का विस्तार

देश	कुल क्षेत्रफल (लाख हेक्टेयर में)	हास (लाख है.) %		कुल जनसंख्या (लाख में)	जनसंख्या घनत्व (सं./ वर्ग किमी.) (हेक्टेयर में)	खेतीयोग्य भूमि प्रति व्यक्ति क्षेत्रफल
चीन	9320	2600	27	11500	123	0.08
भारत	3280	1726	-	10120	324	0.18
कज़ाकस्तान	2711		60	169	6.2	2.13
मंगोलिया	1560		41	23	1.5	0.16
तुर्कमेनिस्तान	488		66.5	42	8.6	0.35
उज़्बेकिस्तान	447		59.2	217	48.5	0.21
पाकिस्तान	796		52	1316	165	0.16
सीरिया	185		75	143	77.3	0.42
जोर्डन	89		96	42	48	0.1
ईरान इस्लामिक गणतंत्र	1636		43	672	41	0.27

स्रोत : यू.एन.सी.सी.डी., 1998 : द सोशल एण्ड इकोनॉमिक इम्पैक्ट ऑफ़ डेज़र्टीफ़िकेशन इन सैवरल एशियन कंट्रीज़

तालिका 25.3 : विश्व, एशिया व भारत में खेतीयोग्य भूमि में हास

खेतीयोग्य भूमि का प्रति व्यक्ति क्षेत्रफल	1950 - 55	1981	1992	2000	2025	सूचना स्रोत
विश्व	0.32	N.A.	0.25	N.A.	N.A.	कृषि मंत्रालय, भारत सरकार
एशिया	0.48	N.A.	N.A.	0.25	N.A.	सी.सी.डी., बीजिंग 1997
भारत	0.9	0.5	N.A.	0.15	00.8	कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, 1997

स्रोत : स्टेटस ऑफ़ ड्राइलैण्ड एण्ड डीफॉरेस्टेशन इन द वर्ल्ड

ii) भारत में कृषि के पारिस्थितिक आधार की उपेक्षा

अग्रवाल (1985-160) के अनुसार भारत की कृषि प्रौद्योगिकी में कृषि के पारिस्थितिक आधार पर ध्यान नहीं दिया गया। आज हमें आवश्यकता इस बात की है कि हम पारिस्थितिक संसाधनों और प्रतिबंधों को पूरी तरह समझें। उदाहरण के लिए, खाद्यान्न और कृषि संगठन के अध्ययन में बताया गया है कि मृदा की क्षरण (loss) दर और उत्पादकता की दर में कमी के बीच निकट का संबंध है। इस अध्ययन के अनुसार, मृदा संरक्षण कृषि प्रबंधन का एक अविभाज्य अंग है।

भारत में बहुत अधिक शुष्क और अर्ध-शुष्क भूमि तथा ज़्यादा ढलान वाले भूभाग हैं। इसलिए इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है कि यहाँ मृदा क्षरण (loss) की गंभीर समस्या हो। यदि मृदा के इस क्षरण को न रोका गया तो वर्षा से सिंचित फ़सली भूमि में तेज़ी से कमी आएगी और वर्षा से सिंचित फ़सलों के उत्पादन में भी कमी आएगी। भारत को, वास्तव में, इसी समस्या का सामना करना पड़ रहा है।

भारत के लगभग 70 प्रतिशत किसान सूखी खेती करते हैं। सूखी खेती में मृदा और पानी, दोनों के संरक्षण की आवश्यकता होती है। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि भारत का कृषि विकास से संबंधित 70 प्रतिशत से अधिक खर्च सिंचाई की खेती पर निर्भर होता है। कृषि में कम पूँजी निवेश के कारण मृदा संरक्षण के उपायों पर पैसा खर्च करना संभव नहीं होता। इसका स्वाभाविक प्रभाव उत्पादकता में कमी पर पड़ता है। इसका प्रभाव फ़सल के चुनाव पर भी पड़ता है। निवेश में कमी के कारण शुष्क भूमि में संलग्न किसानों को मिली-जुली फ़सल प्राप्त होती है, लेकिन उनका कुल कैलोरी-प्रोटीन उत्पादन पर ध्यान नहीं जाता। केवल जहाँ निवेश न ज़्यादा होता है और न कम (जहाँ मृदा क्षरण की दर केवल 50 प्रतिशत हो) वहाँ उच्च कैलोरी वाली फ़सलों के उगाने की अपेक्षा की जा सकती है। जहाँ काफी अधिक पूँजी-निवेश हो (जहाँ मृदा क्षरण की दर नगण्य हो) वहाँ उच्चतम फ़सल-मिश्रण में न्यूनतम प्रोटीन की मात्रा हमेशा पाई जाती है।

iii) मृदा क्षरण की समस्या

भारत में कृषि के लिए जलवायु संबंधी उपयुक्तता की दृष्टि से पर्याप्त प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध है। भारत की 85 प्रतिशत भूमि में फ़सल उगाने के लिए वर्षा और उपयुक्त तापमान संबंधी स्थितियाँ विद्यमान हैं। इस पारिस्थितिक संसाधन के संबंध में बहुत से प्रतिबंध भी हैं जिसके कारण उत्पादकता का स्तर स्थायी आधार पर बनता है।

भारत में कृषि में सबसे महत्वपूर्ण बात भूमि के अपक्षीणन (degradation) की है। यह मृदा के क्षरण से होता है। दूसरे शब्दों में, मृदा के संरक्षण से कृषि-उत्पादन को बढ़ावा मिलता है। अभी तक हमने भू-संसाधनों के प्राकृतिक पहलुओं के बारे में ही चर्चा की थी। अब हमें भारत में सामाजिक संगठन और भूमि सुधार की जटिलताओं पर भी ध्यान देना है।

भारत में लोगों के द्वारा भूमि की सुलभता, इसके नियंत्रण और प्रबंधन तब तक हमें पूरी तरह से समझ नहीं आएँगे जब तक पुरानी भूमि नीतियों और भूमि सुधार को नहीं समझा जाएगा। इन विषयों के बारे में पर्याप्त सामग्री भारत के सामाजिक-आर्थिक इतिहासों में लिखी जा चुकी है। अगले भाग में इन ग्रंथों के बहुत से संदर्भ आपको देखने को मिलेंगे। इकाई में हमारा ध्यान मुख्य रूप से पारिस्थितिकी और संसाधनों पर केंद्रित रहा है इसलिए हमने यहाँ भूमि संसाधन का उल्लेख मुख्य रूप से पारिस्थितिक संतुलन की दृष्टि से किया है। पारिस्थितिक संतुलन से ही स्थायी विकास संभव है। अग्रवाल (1985 : 162) ने लिखा है : “यदि भारत के लोग भूखे रहें तो मैं यह बात पूरे दावे के साथ कह सकता हूँ। इसका कारण उनकी बढ़ती हुई जनसंख्या नहीं है बल्कि देश के प्राकृतिक संसाधनों का कुप्रबंध है।”

बोध प्रश्न 3

1) कृषि में “निरंतर पूँजी निवेश परंतु कम उत्पादन” का क्या अर्थ है?

.....
.....
.....

2) भारत जैसे देश में कृषि उत्पादन को बढ़ाने के क्या तरीके हैं?

.....

.....

.....

.....

25.4 भूमि की सुलभता और लोगों के द्वारा उसका नियंत्रण एवं प्रबंधन

भारत के ज़्यादातर लोग ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं और इन क्षेत्रों का बहुसंख्यक श्रमिक वर्ग कृषि पर आधारित आर्थिक कार्यों में कार्यरत है। इससे स्पष्ट ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि भारत की अर्थव्यवस्था और लोगों के सामाजिक जीवन में कृषि की महत्वपूर्ण भूमिका है। कृषि मूलतः, भूमि, श्रमिक वर्ग और पूँजी – इन तीन उत्पादन के कारकों पर आधारित है। भारत में भूमि सुधार की दृष्टि से इन तीन कारकों पर चर्चा से लोगों द्वारा भूमि की सुलभता के बारे में हमें अच्छा संकेत मिल सकता है और यह भी पता सकता है कि वे किस प्रकार भूमि का नियंत्रण और प्रबंधन करते हैं।

भूमि के संबंध में चर्चा के दौरान हम पहले ही भूमि के उपयोग के विन्यास, इसकी उत्पादकता के बारे में चर्चा कर चुके हैं। अब हम जोत की भूमि के विन्यास के बारे में विचार करेंगे।

25.4.1 काश्तकारी पर लोगों का असमान अधिकार

प्राचीनकाल से ही भारत में खेती-बाड़ी लोगों का मुख्य व्यवसाय रहा है। यही कारण है कि भूमि की सुलभता लोगों के लिए और खासकर किसानों के लिए विषय है। हमारे ऐच्छिक पाठ्यक्रम **भारत में समाज (ई.एस.ओ.-02)** की इकाई 10 के अंतर्गत भाग 10.3, 10.4, और 10.5 में भारतीय इतिहास की विभिन्न अवस्थाओं के दौरान ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। यहाँ उन पृष्ठों की विषयवस्तु को दोबारा उद्धृत न करके हमारी सलाह है कि आप एक बार उपर्युक्त सामग्री पढ़ें और भारत के लोगों के लिए ज़मीन का कितना महत्व है, इसके बारे में अपने विचार बनाने का प्रयास करें।

तालिका 25.2 दर्शाती है कि अखिल भारतीय स्तर पर भूमि स्वामित्व प्रतिमान कृषिक पदानुक्रम में सबसे नीचे सीमांत किसानों के उच्च संकेन्द्रण के साथ असमानता द्वारा अभिलक्षित रहा है। ग्रामीण घरों में उनका अनुपात 1977-72 में 62.62% से बढ़कर 1992 में लगभग 72% हो गया। इन 72% परिवारों के पास मात्र 17% भूमि है। जबकि इन परिवारों की प्रतिशतता वृद्धि इस काल में 9% की सीमा से ऊपर गई है, भूमि पर उनका नियंत्रण मात्र 7% ही बढ़ा है। दूसरी ओर, बड़े और मध्यम भूस्वामी जो परिवारों का मात्र 5.5% हैं, कुल भूमि के लगभग 40% का मिलाजुला हिस्सा रखते हैं। तथापि, बड़े किसानों में 2.12% से 0.88% की सीधी गिरावट आई है; इन अवधियों में उनका स्वामित्व क्षेत्र भी लगभग 23% से घटकर 14% से भी कम रह गया है। यह बात महत्वपूर्ण है कि छोटे व अर्ध-मध्यम श्रेणी के किसान परिवारों के अनुपात में आंशिक गिरावट रही है। तथापि, इन श्रेणियों के पास भूमि के स्वामित्व में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

तालिका 25.4 : 1971-72, 1982 व 1992 में भारत में ग्रामीण क्षेत्र के परिवारों और पारिवारिक श्रेणियों के पास भूमिक्षेत्र का विवरण प्रतिशत

भूमि : सुलभता, नियंत्रण तथा प्रबंधन

श्रेणियाँ	परिवारों की प्रतिशतता			स्वामित्व में भूमि की प्रतिशतता		
	1971-72	1982	1992	1971-72	1982	1992
सीमांत	62.62	66.64	71.88	9.76	12.22	16.93
लघु छोटे किसान	15.49	14.70	13.42	14.68	16.49	18.59
अर्ध-मध्यम	11.94	10.78	9.28	21.92	23.38	24.58
मध्यम	7.83	6.45	4.54	30.73	29.83	26.07
बड़े किसान	2.12	1.42	0.88	22.91	18.07	13.83
कुल	100	100	100	100	100	100

स्रोत : एन.एस.एस. 1971-72, 1982 व 1992

i) समाज के उच्च वर्गों के पास बहुत अधिक भूमि का सकेन्द्रण

कृषि पर राष्ट्रीय आयोग, 1976, की रिपोर्ट के अनुसार (1977 : 9) 1954 में भारत में जिन परिवारों के पास 5 एकड़ (2.02 हैक्टेयर) भूमि थी उन परिवारों की संख्या कुल परिवारों की संख्या का 24.77 प्रतिशत भूमि थी लेकिन उनके पास कुल जमीन के केवल 16.77 प्रतिशत भूमि थी। दूसरी ओर, जिन परिवारों के पास 25 एकड़ (10.12 हैक्टेयर) या इससे अधिक भूमि थी उन परिवारों की संख्या कुल संख्या का 3.71 प्रतिशत थी और उनके पास कुल भूमिक का 34.27 प्रतिशत भाग था। भारत जैसे असमानता वाले समाज में भूमि पर गरीबों के अधिकार को देखने से प्रतीत होता है कि गत चार दशकों में लागू किए गए कानूनों का ग्रामीण निर्धनों पर दशकों में लागू किए गए कानूनों का ग्रामीण निर्धनों पर बहुत कम प्रभाव पड़ा है।

ii) पूर्व ब्रिटिश काल तथा ब्रिटिश काल के दौरान भूमि नीति

औपनिवेशिक काल के दौरान राज्य (जिसे एक तरह से सबसे बड़ा जमींदार कहा जा सकता था) की भूमि नीति का उद्देश्य राजस्व में वृद्धि करना था। भारतीय इतिहास के ब्रिटिश शासन से पूर्व की स्थिति में भू-नीति का उद्देश्य कृषि उत्पादन को बनाए रखना, उसे बढ़ाना और किसी भी भूभाग का स्वामित्व राजनैतिक सत्ता पाकर हासिल करना था। इस नीति के अंतर्गत काश्तकारों को अपने जोत क्षेत्र के नियंत्रण और प्रबंधन की आजादी थी ब्रिटिश शासन के दौरान पहले से चली आ रही पट्टेदारी को भूमि-कर के माध्यम से अधिकाधिक राजस्व बटोरने का साधन बना लिया गया। ब्रिटिश शासन काल में भारत में विभिन्न भागों में विभिन्न भू-व्यवस्थाओं ने ऐसे हालात पैदा कर दिए जिससे किसान निर्धन हो गए। इस कारण से बार-बार अकाल पड़ने लगा। भूमि के नियंत्रण और प्रबंधन की परंपरागत व्यवस्था को छिन्न-भिन्न होने दिया गया। इस अन्याय के विरुद्ध छोटे-बड़े सामूहिक विद्रोह के द्वारा भारतीय किसानों ने यदा-कदा विरोध प्रदर्शित किए।

भारत के स्वाधीन होने से भी पूर्व सामंती जमींदारों की भूमिका के विरोध में सशक्त जनमत तैयार हो गया था। ऐसा अनुभव किया गया कि बड़े बिचौलिए जमींदारों का वर्ग देश की कृषि संपदा को अनुत्पादक मार्गों की ओर मोड़कर उसको नष्ट कर रहा है। सन् 1936 में जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय योजना समिति स्थापित की गई। भू-नीति के

लिए इस समिति की एक उप-समिति भी थी। राष्ट्रीय योजना समिति द्वारा 1940 में प्रस्तुत अंतरित रिपोर्ट के आधार पर, राष्ट्रीय योजना समिति ने कृषकों और राज्य के बीच बिचौलियों को अमान्य घोषित करने का निर्णय किया।

जे.सी. कुमारप्पा की अध्यक्षता में, कांग्रेस कृषि-सुधार समिति ने 1949 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में अनेक सिफारिशें थीं जिनमें से कुछ जोत क्षेत्र के आकार से संबंधित थीं। (इस समिति की रिपोर्ट के विस्तृत विवरण के लिए कृषि संबंधी राष्ट्रीय आयोग, 1976 की रिपोर्ट, खण्ड XVI, पृष्ठ संख्या 21 से 23 तक देखिए)। इस रिपोर्ट ने “आर्थिक जोत” की संकल्पना को लागू किया। आर्थिक जोत की संकल्पना का अभिप्राय यह है कि काश्तकार के रहन-सहन का एक समुचित स्तर बना रहे और सामान्य आकार के उसके परिवार के सदस्यों को पूर्ण रोजगार और बैलों की कम से कम एक जोड़ी उपलब्ध हो।

उप-भाग को समाप्त करने से पूर्व यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि देहाती गरीब लोगों का भूमि सार्वजनिक संपत्ति पर भी थोड़ा ही अधिकार था। जोधा (1990) द्वारा किए गए अध्ययन में सार्वजनिक संपत्ति (सी पी आर) को सार्वजनिक वन, चरागाह/बंजर भूमि, तालाब/जोहड़, नदी-नाले, जल विभाजक, जल निकास/नदी तट और नदी/ तालाब के रूप में निरूपित किया है। इस अध्ययन में यह बताया गया है कि देहाती गरीबों के लिए सार्वजनिक भूमि आय का एक महत्वपूर्ण साधन है। अन्य अध्ययनों में (देखिए राव, 1992) यह पाया गया है कि सी.पी.आर. पर धनी लोगों की पहुँच अधिक है, केवल ऐसे पिछड़े हुए गाँवों में (जहाँ धनी कृषक हैं ही नहीं) गरीब लोग भी सी.पी.आर का समुचित उपयोग कर सकते हैं। धनी वर्ग द्वारा अपनी कृषि भूमि से वंचित किए जाने के बाद उन्हें सी.पी.आर. के इस्तेमाल के लिए भी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है।

1951 से शुरू होने वाली पाँच पंचवर्षीय योजनाओं में कुछ भूमि सुधार नीति संबंधी सिफारिशें की गईं। इन सिफारिशों में भूमि के उपयोग, भू-स्वामित्व और कृषि संबंधों के बारे में एक नया परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत किया गया। इनको लागू करने का उद्देश्य भारत के बहुसंख्यक काश्तकारों की उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के लिए भूमि संबंधी नीति के नए लक्ष्यों को प्राप्त करना था। इसीलिए अगले उप-भाग में 1974 में भारत की स्वाधीनता के बाद भूमि सुधारों के लिए लागू किए गए कानूनी प्रावधानों का विश्लेषण और मूल्यांकन किया जा रहा है।

बोध प्रश्न 4

- 1) प्रति एकड़ के हिसाब से सीमांत और अल्प भूमि जोतों की सीमा बताइए। अपना उत्तर दो पंक्तियों में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

- 2) भूमि की पट्टेदारी और भूमि पर अधिकारों के संबंध में कानून कौन बना सकता है?

.....

.....

.....

.....

3) ब्रिटिश-शासित भारत में भू-नीति के मुख्य लक्ष्य क्या थे?

.....
.....
.....
.....

4) भारत में किसानों को गरीब बनाने की स्थितियाँ कैसे पैदा हुई, इनकी शुरुआत किसने की?

.....
.....
.....
.....

5) “आर्थिक जोत” की संकल्पना का निरूपण कीजिए।

.....
.....
.....
.....

25.4.2 भूमि सुधार के लिए कानूनी उपाय, किसानों तथा ज़मीन के उचित उपयोग हेतु इन उपायों के निहितार्थ

1950, 1960 और 1970 के दशकों के दौरान भूमि सुधार के संबंध में बनाए गए कानूनों में निम्नलिखित बातों पर ध्यान केंद्रित किया गया :

- i) बिचौलिए पट्टेदारों का उन्मूलन
- ii) काश्तकारी अधिकारों की सुरक्षा
- iii) जोतों की सीमा का निर्धारण
- iv) चकबंदी

कानून बनाने के बाद इसे लागू करने की ओर भी ध्यान दिया जाना था। आइए अब ऊपर दिए गए प्रत्येक कार्यक्रम के इस पहलू पर विचार करें।

i) बिचौलिए पट्टेदारों का उन्मूलन

भूमि सुधार के संदर्भ में बिचौलिए उन भूमि धारकों को कहा गया है जिनका उद्भव अंग्रेजों द्वारा स्थापित ज़मींदारी प्रथा से हुआ है। भूमि सुधारों का कार्य राज्य सरकारों का है। इसका मतलब यह है कि भारतीय संघ में प्रत्येक राज्य को इस कानून को लागू करना था। यही कारण है कि प्रत्येक राज्य में बिचौलियों की समाप्ति अलग-अलग ढंग से हुई। यहाँ हमने प्रत्येक राज्य के कानून निर्माण का विवरण नहीं दिया है। परंतु एक बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल और उड़ीसा जैसे राज्यों में ज़मींदारी प्रथा की जड़ें मजबूत थीं वहाँ

बिचौलियों को हटाने के कानून को दो कारणों से आलोचना हुई पहला कारण, बिचौलियों को बहुत ऊँची दर पर मुआवजा देना था। इसका कारण यह था कि उन्हें अपनी ज़मीनों के बड़े भाग पर स्वयं कृषि करने वाली जोतों के रूप में, कब्ज़ा बनाए रखने की इज़ाजत मिल गई थी।

ii) काश्तकारी अधिकारों की सुरक्षा

आजादी के बाद सुधार के आरंभिक वर्षों में काश्तकारों को पहले से अधिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए तत्कालीन काश्तकारी कानूनों में संशोधन किया गया। फलस्वरूप ज़मींदारों ने बड़े पैमाने पर काश्तकारों, उप-काश्तकारों और बँटाईदारों को बेदखल कर दिया। उन्होंने ज़्यादा से ज़्यादा ज़मीन पर स्वयं खेती करने के नाम पर उसे अपने अधिकार में रखने के लिए यह बेदखली की। उनका यह अभियान इतना जोरदार था कि बहुत जल्दी काश्तकारी की पुरानी प्रणाली छिन्न-भिन्न हो गई (देखिए खुसरो 1958 : 73-75; और दंडेकर तथा खुदानपुर 1957 : 187)। इस स्थिति का सामना करने के लिए, जिसका प्रसार 1960 के दशक के मध्य तक काफी विस्तृत क्षेत्र में हो गया था, राज्यों ने काश्तकारी के कानूनों में संशोधन किया। काश्तकारी सुधारों का प्रभाव बिचौलियों की कृषि भूमि के काश्तकारों पर, बिचौलियों की कृषि भूमि के काश्तकारी के कानूनों में संशोधन किया। काश्तकारों का प्रभाव बिचौलियों की कृषि भूमि के काश्तकारों पर, बिचौलियों के उप-काश्तकारों पर, रैयतवाड़ी क्षेत्रों में रैयतों से प्राप्त भूमि पर काश्त करने वालों पर और बँटाईदारों पर पड़ा जिन्हें प्रायः काश्तकार नहीं माना जाता था। काश्तकारी कानून का संबंध (क) काश्तकारी की सुरक्षा, (ख) काश्तकारों के लिए उचित लगान का निर्धारण, (ग) ज़मींदारों को स्वयं खेती करने के लिए कुछ थोड़ी-बहुत ज़मीन ही अपने पास रखने का अधिकार; और (घ) जिन क्षेत्रों का पुनर्ग्रहण नहीं किया जाना था, वहाँ ज़मींदार-काश्तकार संबंधों को समाप्त करके उस क्षेत्र के खेतिहर काश्तकारों को उन भूमियों के कृषक स्वामी बनाना।

चूँकि काश्तकार शब्द को ठीक प्रकार से परिभाषित नहीं किया जा सका, इसलिए बँटाईदारों को इसमें शामिल नहीं किया गया और काश्तकारी कानून को प्रभावी ढंग से लागू नहीं किया जा सका। इसके अलावा, ज़मींदार लोग काश्तकारों को कई कारणों से बेदखल करने में सफल हो जाते थे। इस प्रकार वे उनके काश्तकारी अधिकारों के परित्याग के प्रावधान का सहारा लेकर अपने काश्तकारों को स्वेच्छया अपनी काश्त की भूमि का परित्याग करने के लिए बाधित करते थे। इसके अतिरिक्त बहुत से राज्यों (मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, केरल, गुजरात, कर्नाटक और उड़ीसा) में ज़मींदारों को काश्तकारों की भूमि को सीमित अवधि के अंदर पुनर्ग्रहण करने की अनुमति दी गई थी। इस प्रावधान के अंतर्गत बहुत से ज़मींदारों ने अपने काश्तकारों के काश्तकारों को असुरक्षित और प्रभावहीन बना दिया।

जहाँ तक कि लगान निर्धारित करने का प्रश्न है, हमें अभी तक एक-समान उचित लगान लागू करने की बात दिखाई नहीं दी। लगान निर्धारित करने की प्रक्रिया बहुत ही जटिल थी। जो काश्तकार उचित लगान निर्धारित करने की माँग करता उसे ज़मीन से बेदखली की धमकी का सामना करना पड़ता। एक और बात यह भी थी कि कोई काश्तकार तभी कृषक भूस्वामी की हैसियत प्राप्त कर सकता था यदि उस भूमि पर उसका कुछ वर्षों तक कब्ज़ा रहा हो। ज़मींदार लोग रिकार्डों में भी हेराफेरी कर लेते थे और काश्तकारों को एक कृषि भूमि में अदलते-बदलते रहते थे। इसका परिणाम यह होता था कि उनके कब्ज़े की अवधि में व्यवधान पड़ जाता था। इससे स्पष्ट है कि वास्तव में काश्तकारी अधिकारों के कानून का लाभ उन काश्तकारों को नहीं मिल पाता था।

iii) जोतों की अधिकतम सीमा (ceiling) का निर्धारण

भूमि के पुनर्वितरण के उपायों के रूप में जोतों की उच्चतम सीमा का निर्धारण आवश्यक कदम माना गया। स्वाधीनता के बाद लगभग पन्द्रह वर्ष तक बड़ी जोतों की उच्चतम सीमा निर्धारित

करने के कार्य को महत्वपूर्ण समझा जाता रहा लेकिन इसे भूमि सुधार के कार्यक्रमों में गंभीरता से नहीं लिया गया। सन् 1960 तक भी यह एक अस्पष्ट संकल्पना या संभावना मात्र रहा। सन् 1960 और 1972 के बीच जोतों की अधिकतम सीमा निर्धारण के लिए कानून बनाए गए और उन्हें प्रत्येक राज्य में लागू किया गया। जोतों की उच्चतम सीमा निर्धारण के लिए कुछ राज्यों ने व्यक्ति को इकाई माना, जबकि अन्य राज्यों ने परिवार को इकाई के रूप में स्वीकार किया। प्रत्येक राज्य में ऐसे भूमि के प्रकारों की अपनी सूची थी जो जोतों की सीमाबंदी के लिए बनाए गए कानूनों के दायरे में नहीं जाती थी।

बड़े ज़मींदार इन कानूनी उपायों की परवाह नहीं करते थे क्योंकि इनमें कानूनों से बचने के बहुत रास्ते थे। भूमि की उच्चतम सीमा निर्धारण करने के कानूनों के लागू होने की संभावना को देखकर उन्होंने अपनी ज़मीनों को छोटे-छोटे हिस्सों में बाँट दिया और उनका "बेनामी" अंतरण शुरू कर दिया। आमतौर पर भूमि की उच्चतम सीमा बहुत अधिक रखी गई थी। इस कारण अब भी ज़मीनों पर धनी किसानों का कब्जा बना रहा। भूमि की अधिकतम सीमा से छूट के कारण उच्चतम सीमाबंदी कानून निरर्थक सिद्ध हुए। सन् 1970 में, भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री ने भूमि-सुधारों की आवश्यकता पर बल दिया। इससे भी भूमि सुधार के कार्यान्वयन की प्रक्रिया को तेज़ करने में कोई मदद नहीं मिली। सन् 1973 में, योजना आयोग की कार्यदल रिपोर्ट, 1973, में भूमि सुधार के कार्यक्रमों की असफलता को स्वीकार किया गया (रिपोर्ट ऑफ द नेशनल कमीशन ऑन एग्रीकल्चर, 1976-79)।

कानून की प्रभावहीनता के निम्नलिखित मुख्य कारण माने गए हैं :

- क) कृषि सुधारों के साधन रूप में कानून पर अत्यधिक निर्भरता
- ख) राजनीतिक इच्छा-शक्ति का अभाव
- ग) भूमि-सुधारों का पूर्ण दायित्व कुछ प्रशासनिक एजेंसियों पर डाल देना
- घ) चेतना में कमी और संभावित लाभ पाने वालों में संगठन की कमी
- ङ) शक्तिशाली ज़मींदारों द्वारा अपने लाभ के लिए कानूनों और उनके कार्यान्वयन की प्रक्रियाओं का इस्तेमाल करना।

इसका परिणाम यह हुआ कि 1990 के दशक में भारत के प्रधानमंत्री को भूमि का अधिकार पाने वालों पर भूमि-सुधारों के प्रभाव का गंभीरतापूर्वक मूल्यांकन के लिए कहना पड़ा (देखिए द टाइम्स ऑफ इंडिया, 10.10.1992, पृष्ठ 1)। राव ने (1992 : ए 50 ए-64) अपने लेख "भूमि सुधार के अनुभव" (Land Reform Experiences) में यह दिखाने की कोशिश की कि; भूमि सुधारों के लिए उठाए गए कदमों का अनुपालन कहीं सामान्य तो कहीं निराशाजनक रहा है। आइए, अब हम भूमि सुधारों के अंतिम चरण यानी चकबंदी कानून-निर्माण पर एक नजर डालें।

सोचिए और करिए 2

भूमि सुधारों और कानूनी उपायों को लागू करने के बारे में प्रधानमंत्री के आह्वान की समाचारपत्र में प्रकाशित रिपोर्टिंग (ऊपर उल्लिखित) को पढ़िए। इस बारे में अपने विचारों को प्रकट करने के लिए 250 शब्दों की टिप्पणी लिखिए। यह भी स्पष्ट कीजिए कि क्या आप प्रधानमंत्री की इस बात से सहमत हैं कि भारत में भूमि सुधारों को प्रभावी ढंग से लागू नहीं किया गया। इस बारे में अपनी सहमति या असहमति के कारण भी बताइए।

iii) चकबंदी

एक के बाद एक सभी पंचवर्षीय योजनाओं में उत्पादकता को बढ़ाने के लिए चकबंदी की आवश्यकता को स्वीकार किया गया। भारत में, उत्तराधिकार के प्रचलित कानूनों के कारण कृषि भूमि का बँटवारा किया जाता था। इसके अलावा, अंतरण और कर्ज लेने की परंपरा के कारण, कृषि भूमि छोटे-छोटे खेतों में बँट गई थी और ये खेत एक-दूसरे से बहुत दूर थे। हिंदुओं और मुसलमानों, दोनों के उत्तराधिकार कानून में इस बात की व्यवस्था है कि अचल संपत्ति का विभाजन सभी वारिसों में किया जाता है। इससे भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े हो जाते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत में औसत कृषि भूमि छोटे-छोटे टुकड़ों में है। भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े होने की निम्नलिखित हानियाँ हैं :

- क) छोटी जोतें खेती करने के लिए अलाभकर होती हैं।
- ख) एक खेत से दूसरे खेत में अलग-अलग हल चलाने, बीज बोने, फसल काटने आदि कार्यों में पैसा, समय और श्रम की बरबादी होती है।
- ग) खेती के कार्यों की देखरेख सुविधाजनक नहीं होती।
- घ) सिंचाई, नालियाँ बनाने और कृषि कार्य पर अधिक खर्च होता है।
- ङ) फसल के दिनों में अलग-अलग खेतों में आने-जाने में कठिनाई होती है और इस कारण दूसरे के खेतों में से होकर जाने के कारण झगड़े होते हैं और तनाव पैदा होता है।
- च) खेती की भूमि के विभाजन से सीमाओं के अंकन में कृषि भूमि का नुकसान होता है।

कृषि भूमियों के छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटने से होने वाली समस्याओं को पहचान कर सन् 1905 में ही चकबंदी का विचार पैदा हुआ। पहले मध्य भारत में चकबंदी का काम शुरू किया गया। बाद में, दूसरे प्रांतों ने भी सहकारी समिति अधिनियम के अंतर्गत कृषि भूमि की चकबंदी के उपाय लागू किए। आज़ादी के बाद, लगभग सभी प्रदेशों ने अनिवार्य चकबंदी को लागू करने की बात मान ली। इस क्षेत्र में पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश ने काफी प्रगति की है।

लगभग 13.7 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र की चकबंदी की जानी है। चौथी पंचवर्षीय योजना के अंत तक, इसमें से लगभग 3 करोड़ 93 लाख हैक्टेयर भूमि की चकबंदी की गई। योजना आयोग (1989 की रिपोर्ट के अनुसार) 1989 तक कुल कृषि भूमि के लगभग 40 प्रतिशत की चकबंदी हो चुकी थी।

इस कार्यक्रम को दक्षिणी और पूर्वी राज्यों में विशेष महत्त्व नहीं दिया गया। इनमें से अधिकांश राज्यों के पास बहुत कम कृषि योग्य भूमि है। कहा जाता है कि इन राज्यों में भूमि के उपयोग की क्षमता, स्थानीय आबादी के वर्गीकरण और उपभोग प्रतिरूप तथा भूमि की स्थलाकृति के कारण चकबंदी में कुछ समस्याएँ सामने आती हैं। इसीलिए हमें यह आशा हो सकती है कि देश के इस भाग में भी समय आने पर चकबंदी कार्यक्रम को लागू किया जा सकेगा। आइए अब हम इस कार्यक्रम के महत्त्वपूर्ण पहलू पर विचार करें। यह चकबंदी पर होने वाले व्यय से संबंधित है।

यह उस क्षेत्र की स्थलाकृति, उस क्षेत्र में कृषि भूमि का विभाजन, कृषि प्रौद्योगिकी का स्तर और लाभ पाने वालों की भागीदारी जैसे कारकों पर निर्भर करता है। इसमें संदेह नहीं कि पहाड़ी क्षेत्रों में चकबंदी की लागत मैदानी भागों की अपेक्षा अधिक होगी हर क्षेत्र में चकबंदी की लागत उस क्षेत्र के विभिन्न जटिल मुद्दों से जुड़ी होगी। इसलिए पूरे भारत के लिए लागत के एक से आँकड़े देना संभव नहीं है। देश में कई भागों में चकबंदी पर आने वाले खर्च का कुछ भाग

उससे लाभ उठाने वाले किसान वहन करते हैं। इससे राज्य पर चकबंदी की प्रक्रिया में होने वाले किसान वहन करते हैं। इससे राज्य पर चकबंदी की प्रक्रिया में होने वाले व्यय में कमी हो जाती है। साथ ही, यह भी अपेक्षा की जाती है कि राज्य सरकारें लघु और सीमांत कृषकों पर चकबंदी की लागत का भार नहीं डालेंगी।

इस बात को ध्यान में रखना होगा कि यदि खेतों के टुकड़े होने की प्रक्रिया को निरुत्साहित न किया गया तो चकबंदी के लाभ समाप्त हो जाएँगे। चकबंदी पर किया जाने वाला खर्च तभी न्यायसंगत होगा यदि विक्रय, उपहार या बंधक के रूप में खेतों के टुकड़ों में बँटने पर प्रतिबंध लगाया जा सके।

बोध प्रश्न 5

1) भारत में ज़मींदारी प्रथा किसने शुरू की?

.....
.....
.....
.....

2) आज़ादी के बाद, ज़मींदारों ने बड़े पैमाने पर अपने काश्तकारों, उप-काश्तकारों और बँटाईदारों को क्यों भूमि से बेदखल किया? अपना उत्तर तीन पंक्तियों में लिखिए।

.....
.....
.....

3) कोई काश्तकार किस प्रकार कृषक भूस्वामी का दर्जा पा सकता है? अपना उत्तर दो पंक्तियों में लिखिए।

.....
.....

4) क्या केवल कानून के द्वारा कृषि भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारित करने जैसे कृषि सुधारों को प्रभावी ढंग से लागू किया जा सकता है? अपने उत्तर के पक्ष में कारण दीजिए।

.....
.....
.....

5) कृषि सुधारों की चकबंदी के कारण लिखिए।

.....
.....
.....

25.5 भूमि सुधारों के फलस्वरूप कृषि मज़दूरों का उदय व अन्य प्रभाव

भूमि सुधारों के कार्यान्वयन के बारे में हमने ऊपर जो चर्चा की उससे छोटी जोत वाले काश्तकारों के कल्याण की बहुत आशाएँ नहीं बँधती। कृषि-सुधारों के लिए विस्तृत कानून बनाने तथा भारत के कुछ भागों में तथाकथित हरित क्रांति होने के बावजूद उनकी समस्याओं का समाधान नहीं किया जा सका। इसके कारण एक वर्ग को जनसंख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई जिन्हें कृषि मज़दूर कहा गया। यह ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विघटन करने पर मजबूर होना पड़ा। इन्हें बहुत कम मज़दूरी पर काम करना पड़ता और “हरित क्रांति” वाले क्षेत्रों में इन्हें विविध प्रकार से शोषण का शिकार होना पड़ता।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में, भूमि मात्र एक स्थल नहीं – यह उत्पादन का प्रमुख साधन है। जैसे कि यह भूमि मालिक, उसके सेवकों, ग्राम शिल्पकारों आदि का भरण-पोषण करती है। उपज को खरीदने वाला व्यापारी दूसरों को सहारा देने वाला होता है। जब कृषि-चक्र भंग हो जाता है तो ये सभी गतिविधियाँ ठप हो जाती हैं और सभी भूमिहीनों की आजीविका खतरे में पड़ जाती है। (एन.सी.एच.एस.ई. 1986 : ii)।

तथापि, वे लोग जिसके पास अपनी ज़मीन नहीं है, बल्कि मसलन उस पर निर्भर करते हैं, उन पर ध्यान बहुत ही कम दिया जाता है। उदाहरण के लिए, सन् 1960-61 से 1969-70 के दशक में कृषि मज़दूरी की दर में परिवर्तनों से संबंधित विवरण से पता चलता है कि प्रत्येक राज्य में नकद मज़दूरी-दर में वृद्धि हुई है लेकिन वास्तव में, अधिकांश राज्यों में मज़दूरी की दर में कमी हुई है। इसका मतलब यह है कि उन कृषि मज़दूरों को जो मज़दूरी मिलती है उससे पहले जितना सामान नहीं खरीदा जा सकता क्योंकि उसकी क्रय शक्ति कम हो गई है। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि मज़दूरी में उतनी वृद्धि नहीं हुई जितनी भरण-पोषण के लिए जरूरी वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि हुई है। अब चाहे नकद मज़दूरी बढ़ी हो लेकिन इससे मज़दूरों को लाभ नहीं हुआ जिन्हें खाने का सामान और दूसरी चीज़ें खरीदने के लिए पहले से अधिक पैसा देना पड़ता है। जैसे और वास्तविक कमाई में परिवर्तन की दर प्रायः कृषि संबंधी विकास के स्तर, कृषि मज़दूरों की उपलब्धता तथा कृषि मज़दूरों की संगठन शक्ति से प्रभावित होती है। उदाहरण के तौर पर, पंजाब में कृषि का तेज़ी से विकास है। इसी प्रकार, केरल में कृषि श्रमिकों की प्रभावी यूनियनबाज़ी से कृषि मज़दूरों को अधिक मज़दूरी पाने में सफलता मिली।

कृषि श्रमिकों से संबंधित मज़दूरी के कुछ एक पहलू का संबंध पुरुष और स्त्री श्रमिकों की मज़दूरी की दर में अंतर से है। स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा कम मज़दूरी दी जाती है। दूसरे, आपको यह जानकर भी आश्चर्य होगा कि सत्रह राज्यों में से बारह राज्यों में औसतन एक पुरुष कृषि मज़दूर छोटे कृषक श्रमजीवी से अधिक कमाता है। यह बात सीमांत किसानों की बुरी दशा को बताने के लिए पर्याप्त है जिनमें से ज़्यादातर लोगों को लाचार होकर भूमिहीन की मज़दूरी कृषि मज़दूर बन जाना पड़ता है। इसके अलावा, यह भी देखा गया है कि दिहाड़ी वाले मज़दूरों की मज़दूरी सबसे अधिक होती है, उससे कम मज़दूरी कृषि में सबसे ज़्यादा काम वाले मौसम में काम करने वाले और स्थायी रूप से काम करने वाले मज़दूरों की होती है (देखिए जौहरी और पांडे, 1972)।

यदि हम कृषि क्षेत्र और औद्योगिक क्षेत्र की तुलना करें तो हमें पता लगता है कि औद्योगिक क्षेत्र की तुलना में कृषि क्षेत्र की मज़दूरी में नकद कम मिलता है। हालाँकि ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त मात्रा में नकद पैसा दिखाई देता है, फिर भी भारत के कई हिस्सों में मज़दूरी का भुगतान अनाज आदि वस्तुओं के रूप में किया जाता है। यह बात प्रायः फसल काटने के समय में होती है।

मज़दूरी कमाने वालों की पारिवारिक आय प्रायः मज़दूरी के स्तर, रोज़गार की अवधि और परिवार में कमाने वालों की संख्या पर निर्भर करती है इस कारण से इस विषय में कोई सामान्य सिद्धांत निर्धारित करना आसान नहीं है।

कृषि क्षेत्र में न्यूनतम मज़दूरी की नीति में यह आवश्यक है कि इसमें बढ़ोतरी की जाए। इसके लिए किसी ऐसी व्यवस्था की भी ज़रूरत है जिसके द्वारा न्यूनतम मज़दूरी से संबंधित कानून का पालन न करने वालों के विरुद्ध शिकायतों की जाँच की जा सके।

नीति बनाने वाले यह मानकर चले थे कि मज़दूरों की संख्या माँग से अधिक है। यह अनुभव किया गया कि यदि न्यूनतम मज़दूरी के कोई नियम न हो तो मज़दूरों को मुश्किल से मात्र गुजारे-भर के लिए मज़दूरी मिलेगी। भारत में कृषि मज़दूरों की न्यूनतम मज़दूरी का निर्णय करने के रास्ते में कई कारक आते हैं जिनका संबंध विभिन्न प्रकार के श्रमिकों, उनके नियोक्ता मालिकों और क्षेत्रीय विशिष्टताओं से होता है। इसका क्षेत्र बहुत व्यापक है। इसमें वे परिस्थितियाँ भी शामिल हैं जिनके कारण ज़मींदार मालिक मज़दूरों का शोषण करते हैं। स्पष्ट रूप से, कृषि के क्षेत्र में मज़दूरी को बढ़ाने की नीति में इस समस्या के दोनों पहलुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में अतिरिक्त श्रमिक वर्ग की गतिशीलता बढ़ाने के कार्यक्रमों पर पहले ही कार्यक्रम बनाए गए हैं। इस श्रमिक वर्ग का उपयोग कृषि संबंधी कार्यों तथा सड़कों, कुओं, छोटे बाँधों आदि को बनाने के लिए किया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में कल्याण कार्यक्रमों का उद्देश्य पेय जल की आपूर्ति, सफ़ाई, स्वास्थ्य और आवास को बेहतर बनाना है। बेकार भूमि के सुधार के लिए पुनर्वास, कार्यक्रम संचालित होते हैं। वे कृषि मज़दूरों को कृषि क्षेत्र से बाहर निकालकर ग्राम उद्योगों का प्रशिक्षण देकर उनमें लगाते हैं। लोगों में जाति और सांस्कृतिक पूर्वाग्रह को हटाने के लिए साक्षरता के प्रसार के लिए कुछ विशिष्ट पुनर्वास कार्यक्रम चलाए जाते हैं। यहाँ उन कार्यक्रमों का नामोल्लेख मात्र किया गया है। इस विषय में विस्तृत सूचना के लिए आप इस पाठ्यक्रम के खण्ड 3 व 4 देख सकते हैं।

कृषि मज़दूरों पर इस भाग के बाद आइए अब हम अगले भाग में शहरी क्षेत्रों की भूमि की समस्याओं के बारे में संक्षेप में विचार करें।

बोध प्रश्न 6

1) अर्थिक हैसियत के आधार पर सीमांत कृषक और कृषि मज़दूर में किसे ऊपर रखा जाएगा?

.....
.....
.....
.....

2) नकद मज़दूरी की दर और वास्तविक मज़दूरी दर में अंतर को स्पष्ट कीजिए।

.....
.....
.....
.....

25.6 भारत में भूमि और शहरी विकास

भारत में जिस रफ़्तार से शहरी क्षेत्र का विकास हो रहा है उसको देखते हुए हमें भूमि हथियाने, भू-अतिक्रमण, सरकारी और गैर-सरकारी ज़मीन पर अनधिकृत निर्माण, झुग्गी-झोपड़ी बस्तियाँ तथा आग और दूसरे खतरों से बचाव के लिए आवश्यक सावधानियाँ बरते बिना बहुमंज़िली इमारतें बनाने आदि प्रवृत्तियों से संबंधित समस्याओं पर ध्यान देने की आवश्यकता होगी। यह तो एक पूरी इकाई का विषय हो सकता है, परन्तु यहाँ हमने इस विषय पर केवल इस दृष्टि से ध्यान दिया है कि आप ज़मीन की सुलभता तथा इसके नियंत्रण और प्रबंधन के संदर्भ में आने वाली इन समस्याओं से परिचित हो सकें। शहरी क्षेत्रों में भूमि के उपयोग से हमें शहरीकरण के स्थानिक आयामों का पता चलता है। किसी शहर या नगर में मानव द्वारा भूमि के उपयोग या भूमि पर मानवीय गतिविधियाँ नगरवासियों की सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं की जटिलताओं की ओर संकेत करती हैं। भारत में अधिकांश शहरी क्षेत्र भूमि के उपयोग के ऐसे विन्यास को दर्शाते हैं जो उनके प्राचीन इतिहास से जुड़ा है। इन क्षेत्रों का आगे विकास आज की आवश्यकताओं के दबावों से निर्धारित होता है। भारत के आज के शहरों में भूमि के उपयोग के जटिल रूपों का विकास हो रहा है।

शहरी क्षेत्रों में बढ़िया किस्म की ज़मीन के बहुत बड़े भाग पर राज्य/केंद्र सरकार का अधिकार होता है। इसमें वह ज़मीन भी शामिल है जहाँ सेना या रक्षा विभाग के कार्यालय हैं। बची हुई ज़मीन पर तेज़ी से विकसित होने वाले वाणिज्य, व्यापार औद्योगिक विनिर्माण, परिवहन आदि के प्रतिष्ठान होते हैं। ये संगठन भूमि के फैले विस्तार में तथा ऊपर की ओर फैले बहुमंज़िले भवनों के रूप में विकसित हो रहे हैं। बहुत से निकाय शहर के बाहरी इलाके में अपने कार्यालय, गोदाम आदि स्थापित करते हैं। इससे शहरों की सीमाओं का और अधिक विस्तार हो जाता है। कुछ ऐसे भी संगठन हैं जो बहुमंज़िली इमारतों में स्थित हैं। इसके अलावा, शहरों में विभिन्न शैक्षिक, मनोरंजन संबंधी तथा अन्य सेवाएँ भी होती हैं जिन्हें अनुकूल वातावरण में कार्य करने के लिए स्थान की आवश्यकता होती है। शहरीकरण के साथ हमें इन सभी प्रयोजनों के लिए भूमि उपलब्ध करानी होती है।

अब चूँकि शहरी आबादी तेज़ी से बढ़ रही है। इससे शहरों में आवास के लिए भवनों और जन-सुविधाओं की कमी के कारण बहुत-सी समस्याएँ पैदा हो गई हैं। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि गरीबों के आवास के लिए जहाँ-तहाँ गंदी बस्तियाँ बन गई हैं। उधर, शहरी समाज के अपेक्षतया अमीर और अधिक सम्पन्न लोग ज़मीन को हथियाने की मुहिम छेड़ देते हैं। इससे शहरी सम्पत्ति की कीमतें बहुत अधिक बढ़ गई हैं। इनमें से कुछ समस्याओं पर इस पाठ्यक्रम के खंड 2 की इकाई 6 में संक्षेप में चर्चा की गई है।

यहाँ इस बात की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है कि शहरी सम्पत्तियों की उच्चतम सीमा से संबंधित कानून को ज़्यादा सख्ती से लागू करना ज़रूरी है और साथ ही गंदी बस्तियों या झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वाले उन लोगों को भी सामाजिक न्याय मिलना चाहिए जिनका भारत में शहरी क्षेत्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। कृषि भूमियों की उच्चतम सीमा लागू करने के कानून के अनुरूप शहरी सम्पत्ति पर उच्चतम सीमा लागू करने के लिए तदनु रूप एक कानून बनाने के लिए 1969 में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति द्वारा एक संकल्प पारित किया गया था। इसके एक दशक से भी अधिक समय बाद 17 फरवरी, 1976 में शहरी भूमि (उच्चतम सीमा और विनियमन) अधिनियम, 1976 लागू किया गया। शहरों और उपनगरों का वर्गीकरण चार वर्गों में किया गया है जो इस अधिनियम के दायरे में आते हैं। इस अधिनियम के आलोचकों की नज़र में यह अधिनियम 1969 में पेश किए गए प्रस्ताव का हल्का रूप है। इस अधिनियम का प्रयोजन मात्र इतना लगता है कि भू-संसाधनों का बेहतर उपयोग हो सके। इस समय शहरी क्षेत्रों

में बहुमंजिली इमारतों के निर्माण की प्रवृत्ति बढ़ रही है इसलिए अब शहरी सम्पत्ति की उच्चतम सीमा के लिए एक-दूसरे ही प्रकार के कानून की आवश्यकता है। भूमि से अधिक अब हमें शहरी क्षेत्रों में बहुमंजिली इमारतों के निर्माण की प्रवृत्ति बढ़ रही है इसलिए अब शहरी सम्पत्ति की उच्चतम सीमा के लिए एक-दूसरे ही प्रकार के कानून की आवश्यकता है। भूमि से अधिक अब हमें शहरी क्षेत्रों में भूमि का उपयोग करने वालों को ध्यान में लाने की आवश्यकता है।

सोचिए और करिए 3

कल्पना कीजिए की आप शहरी क्षेत्र में भूमि के उपयोग के प्रभारी हैं। आपके उस क्षेत्र में पारिस्थितिक दृष्टि से संतुलित भूमि के उपयोग के लिए कौन-कौन से तीन कदम होंगे? अपनी योजना के बारे में 250 शब्दों की टिप्पणी लिखिए।

25.7 ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में भूमि के नियंत्रण और प्रबंधन में लोगों की भागीदारी

आपको स्मरण होगा कि इस इकाई के उप-भाग 25.4.2 में उल्लेख किया गया था कि भूमि सुधारों के कानूनों की प्रभावहीनता के मुख्य कारणों में से एक कारण निम्न स्तर की चेतना तथा संभावित लाभ पाने वालों में संगठन का अभाव है। मूर (1976) और स्टोक्स (1978) जैसे पाश्चात्य विद्वानों का विचार है कि भारतीय किसानों में विरोध आंदोलनों का प्रायः अभाव पाया जाता है। गफ (1974), देसाई (1979), धनागरे (1983) और गुहा (1983) जैसे अन्य विद्वानों के विचार में अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों के दौरान भारत के प्रत्येक भाग में किसान विद्रोह आम बात थी। यह बात काफी हद तक सही है कि गरीब किसानों और भूमिहीन मजदूरों ने अपने शोषणकर्ता ज़मींदारों के विरुद्ध सफलतापूर्वक संघर्ष किया। एक और बात भी बिल्कुल स्पष्ट है कि चीनी और यूरोपीय किसानों के संगठित आंदोलनों ने वहाँ के समाजों में आधारभूत परिवर्तन किए, लेकिन भारत में किसान आंदोलनों का कोई अखिल भारतीय स्वरूप नहीं था। उन्होंने अब तक भारतीय समाज में किसी प्रकार का उल्लेखनीय और आधारभूत परिवर्तन नहीं किया। इसी तरह, शहरी क्षेत्रों में भी, अब कुछ जन-आंदोलन दिखाई देने लगे हैं। इन आंदोलनों का अभी तक कोई प्रभाव भूमि के नियंत्रण और प्रबंधन की दृष्टि से सामाजिक परिवर्तन लाने पर नहीं पड़ा। निम्नलिखित दो उप-भागों में हम आपको संक्षेप में भू-संसाधनों से संबंधित किसान आंदोलनों और शहरी क्षेत्रों में जन आंदोलनों के बारे में बताएँगे।

25.7.1 कृषक आंदोलन

शहरी भूमि से संबंधित भाग 25.6 की तरह यहाँ भी हमने जिस विषय पर विचार किया है, उस पर चर्चा के लिए यदि पूरा खंड नहीं हो तो कम से कम एक इकाई की तो आवश्यकता होगी ही। इस इकाई में उस उप-भाग को शामिल करके इशारा उद्देश्य आपका ध्यान उन वर्तमान आंदोलनों की ओर दिलाना है जो भारत के विभिन्न भागों में बड़ी संख्या में पाए गए हैं।

लोगों द्वारा ज़मीन की प्राप्यता और कृषि के कार्यकलापों पर नियंत्रण या प्रबंध करने की भावना की दृष्टि से उन कृषक आंदोलनों को उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है जो आंदोलन ज़मींदारों और काश्तकारों के बीच कृषि संबंधी संघर्षों को दिखाते हैं। धनागरे (1983), पांखर (1979) और नंबूरदिरिपाद (1943) के अनुसार उन्नीसवीं शताब्दी और बीसवीं शताब्दी के आरंभ में केरल के मालाबार क्षेत्र में मोपला विद्रोह मुख्य रूप में कृषक वर्ग की बिगड़ी हुई आर्थिक स्थिति के कारण हुए थे। इसी तरह बंगाल के 1930 के दशक के बहाबी और फ़राजी आंदोलनों का कारण भी अंशतः मुस्लिम कृषकों में व्याप्त कृषि संबंधी असंतोष ही था।

केवल आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि, संगठनात्मक और सैद्धांतिक कारणों ने किसान आंदोलनों को उभारने और उनके जारी रहने का काम नहीं किया बल्कि इसके कुछ अन्य कारण भी थे (हेनिंगम, 1982)। आंध्र प्रदेश में और खासकर तेलंगाना क्षेत्र में 1946 और 1951 में तथा समय-समय पर किसान आंदोलन हुए। ये आंदोलन राजनैतिक पार्टियों के हस्तक्षेप के द्वारा संगठित किए गए थे।

किसानों के कई आंदोलनों का आधार बेगारी प्रथा था जिसमें किसानों को ज़मींदारों के यहाँ बलात् श्रम (बेगार, बेच या वेथी आदि विभिन्न नामों से प्रसिद्ध) करना पड़ता था। उदाहरण के लिए, राजस्थान में 1897 और 1941 के बीच, आंध्र प्रदेश में 1922-23 के बीच और अवध में 1921-22 के किसान आंदोलन मूलतः बेगार प्रथा के विरोध में हुए (सुराणा, 1979)। इसके अलावा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और आंध्र प्रदेश में विद्यमान किसान आंदोलनों के कुछ कारण निम्नलिखित थे : ज़मींदारों द्वारा किसानों का प्रकार के करों द्वारा नियंत्रण, लगान में वृद्धि और आसामियों की काश्तकारी से बेदखली (देखिए सिद्दीकी, 1978; सुराण, 1983 और सरस्वती, 1979)।

बहुत-से किसान आंदोलनों का मुख्य कारण सभी काश्तकारों द्वारा कृषि भूमि के समान वितरण की माँग था। ये आंदोलन थे- बंगाल का 1946-47 का तेभागा आंदोलन (धनागरे, 1979), भूमि हथियाने का आंदोलन (प्रसाद, 1986), और नक्सलवादी आंदोलन (बनर्जी, एस., 1980; बनर्जी टी., 1980)। सन् 1950 में विनोबा भावे द्वारा आरंभ किए गए भूदान आंदोलन का भी यही उद्देश्य था। कृषि संबंधी कार्य-प्रणाली में और प्रबंध-व्यवस्था में परिवर्तन के कारण भी कई किसान विद्रोह हुए। जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक फसलों से वाणिज्यिक फसलों में बदलाव के से कृषि की परंपरा में और उसके द्वारा परंपरागत कृषि संबंधों में परिवर्तन आया। इससे कृषि मज़दूरों ने पहले अधिक मज़दूरी की माँग शुरू कर दी। इस मुद्दे को लेकर पश्चिम बंगाल, बिहार और आंध्र प्रदेश में (मुखर्जी, 1979; बाल गोपाल, 1988) नक्सलवादी आंदोलनों ने कई किसान संघर्ष शुरू किए।

अधिकतर किसान आंदोलनों ने छोटे काश्तकारों, ग़रीब आसामियों, बँटाईदारों और भूमिहीन मज़दूरों के मामलों को लेकर संघर्ष किया। इन आंदोलनों में जिन लोगों ने सक्रिय रूप से भाग लिया उनमें विभिन्न प्रकार के कृषकों ने मुख्य भूमिका अदा की और वे इसके सक्रिय सदस्य थे। उदाहरण के तौर पर, सिद्दीकी (1978) के अनुसार उत्तर प्रदेश के एकका आंदोलन में सम्पन्न कृषकों ने मुख्य रूप से भाग लिया। यही बात उत्तरी बिहार की थी जहाँ 1917 और 1942 में किसान आंदोलनों का नेतृत्व सम्पन्न किसानों ने किया। दूसरी ओर, 1962 में केरल में मोपला विद्रोह पर अपने अध्ययन में हार्डग्रेव (1977) ने लिखा है कि इस विद्रोह में केरल के सबसे ग़रीब वर्ग के आसामी काश्तकारों ने भाग लिया।

हार्डीमैन (1981) ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि खेड़ा सत्याग्रह को मुख्य रूप से मध्यम वर्ग के उन किसानों ने समर्थन दिया जिनके पास तीन से पाँच एकड़ तक ज़मीन थी। इसलिए हमारे पास यह कहने का कोई स्पष्ट कारण नहीं है कि इन आंदोलनों में किसी एक या अन्य वर्ग के लोगों ने विशिष्ट भूमिका का निर्वाह किया। हमारे पास इस बात के भी कोई दस्तावेज़ी प्रमाण नहीं है कि इन आंदोलनों में स्त्रियों ने कहाँ तक योगदान किया। फिर भी हमें इस बात की जानकारी है कि कुछ मामलों में उन्होंने वीरतापूर्ण और उल्लेखनीय कार्य किए। उदाहरण के तौर पर, सिंहरोय (1991) के अनुसार पश्चिम बंगाल के कुछ भागों में तेभागा किसान आंदोलन में स्त्रियों ने इस आंदोलन को जीवित रखने में अहम् भूमिका अदा की।

इस प्रकार, यहाँ किसान, आंदोलनों पर चर्चा के बाद शहरी भूमि उपयोग के आंदोलनों पर विचार किया जाएगा।

25.7.2 शहरी क्षेत्रों में भूमि के उपयोग से संबंधित समस्याओं के प्रति लोगों की जागरूकता

भूमि : सुलभता, नियंत्रण तथा प्रबंधन

भगवान या प्रकृति के बजाए मनुष्य स्वयं अपने कार्यों से अपने आवासीय भूभागों को विभिन्न प्रकार की आपदाओं के प्रति प्रवण बना लेता है। इसके फलस्वरूप बहुत बड़ी संख्या में लोग इन मानव निर्मित आपदाओं से प्रभावित होते हैं। शहरी क्षेत्रों में योजना के अभाव में सरकारी भूमि पर गंदी बस्तियाँ बन जाती हैं। उदाहरण के लिए, रेलवे लाइन के दोनों ओर, अविकसित खड्डे वाली ज़मीनों, बड़े भवनों के निर्माण स्थल के पास, नदी के किनारे की ज़मीन पर काम-धंधे की तलाश में आने वाले गरीब लोगों द्वारा सामान्यतः अवैध रूप से कब्ज़ा कर लिया जाता है। इन स्थानों पर उनके बच्चों को खुला मैदान मिल जाता है और अपने नित्य-कर्म शौचादि से निपटने का स्थान उपलब्ध हो जाता है।

इन बस्तियों में जीवन के लिए आवश्यक पानी, जल-विकास के लिए नालियों, सफ़ाई, शौचादि और परिवहन आदि सुविधाएँ उपलब्ध नहीं होतीं। इससे पर्यावरण प्रदूषित हो जाता है। यह प्रदूषण शहरों की हवा, शोर, औद्योगिक धूलि, सीसा आदि से और अधिक बढ़ जाता है। अभी भारत में हमारे पास घरों, नगरपालिका और औद्योगिक क्रियाकलापों से उत्पन्न ठोस कूड़े-कचरे से होने वाले भूमि के प्रदूषण के विश्वसनीय आँकड़े नहीं हैं। अवशिष्ट द्रव को फिर से शुद्ध करने की पृथ्वी में अंतर्निहित क्षमता है। हमारी चिंता का विषय ठोस कूड़ा-कचरा है क्योंकि उसको फिर से उपयोग में लाने के लिए हमें पैसा, समय और ऊर्जा आदि संसाधनों को खर्च करना पड़ता है। कूड़े-कचरे का किसी स्थान पर ढेर लगाना एक सस्ता तरीका है लेकिन यह समस्या का कोई अंतिम समाधान नहीं है। कुछ शहरी क्षेत्रों में लोग इस समस्या के प्रति सजग हो रहे हैं। पश्चिमी देशों में विद्यार्थी और अन्य युवा लोग कूड़े-कचरे को इकट्ठा करने, उसे अलग-अलग करने और उसे संसाधित करने की ज़िम्मेदारी उठा रहे हैं। भारत में हमें अभी इन समस्याओं के प्रति सजग होना है।

शहरी क्षेत्रों में कुछ स्वैच्छिक संस्थाएँ गंदी बस्तियों के पर्यावरण के सुधार में लगी हैं, उदाहरण के तौर पर कुछ स्थानों पर गंदी बस्तियों में रहने वालों के लिए चलते-फिरते शौचालयों की व्यवस्था की गई है।

शहरी क्षेत्रों में गंदी बस्तियों के पर्यावरण के सुधार के लिए चलाई गई योजनाएँ ज़्यादा नहीं हो सकी हैं। निर्माण और आवास मंत्रालय की रिपोर्ट में बीस सूत्री कार्यक्रम (19.7.1984) की समीक्षा की गई जिसमें इसके असफल होने के निम्नलिखित कारण बताए गए हैं:

- क) स्थानीय निकायों के पास पैसे और जन-शक्ति की कमी के कारण बंदी बस्तियों में शुरू किए गए सुधार कार्यों को जारी नहीं रखा जाता।
- ख) सुधार कार्यों को लागू करने के लिए राज्य सरकार द्वारा समय पर धन नहीं दिया जाता।
- ग) कुछ राज्यों ने तो अभी तक अपने राज्यों के नगरों और उपनगरों में गंदी बस्ती क्षेत्रों के निर्धारण के लिए सर्वेक्षण तक नहीं किया है।

प्रायः यह अपेक्षा की जाती है कि इन कार्यों के लिए स्वैच्छिक संस्थाएँ आगे आकर इन सुधार कार्यों को अपने हाथ में लेंगी। जिन लोगों को इन सुधारों से लाभ होने वाला है वे भी ऐसी योजनाओं में भाग नहीं लेते इसलिए स्वैच्छिक संस्थाएँ भी सिलसिलेवार इन सुधार कार्यक्रमों को जारी नहीं रख पातीं। कई शहरों में बेहतर पर्यावरण उपलब्ध कराने के लिए इस प्रकार की व्यापक विकास योजना (सी.डी.पी.) तैयार की गई है (देखिए गौडा और श्रीधर, 1987)। ये योजनाएँ सामान्य रूप से स्थानीय/ या राज्य अधिकारों द्वारा शुरू की जाती हैं जो धीरे-धीरे बंद हो जाती हैं और उनसे कोई लाभ नहीं होता। इनमें लोगों की भागीदारी भी संभव नहीं

है। नीति और योजना बनाने वाले भी प्रायः लोगों की भागीदारी पाने का प्रयास नहीं करते। लोग स्वयं शहरी पर्यावरण के सुधार का काम अपने हाथ में नहीं ले सकते क्योंकि इसके लिए बहुत अधिक धन, अवसंरचनात्मक (infrastructural) आधार और लोगों तथा प्रशासन की सतत रुचि की भी आवश्यकता होती है।

मैसूर शहर में 1986 में शहरी वानिकी की योजना शुरू की गई थी (देखिए गौडा और श्रीधर, 1987 : 178-179)। इसका अभी आठ साल बाद मूल्यांकन किया जाना है। शहरी वानिकी से अभिप्राय शहरी क्षेत्र में वनों को लगाने और उनकी देखभाल से है। शहरी वानिकी कार्यक्रम वन विभाग के ही एक प्रभाग द्वारा चलाया जाता है। 1986-87 में मैसूर शहर में वानिकी पौध-शालाओं में तैयार किए 50,000 से अधिक पौधे वितरित किए गए थे। इस कार्यक्रम की सफलता लोगों के समर्थन और उनकी सजगता पर निर्भर करती है। कुछ शहरी क्षेत्रों में हमने विज्ञान आंदोलन की बात सुनी है। इसमें भी पर्यावरण संबंधी शिक्षा को विकसित करने की काफी संभावना है।

बोध प्रश्न 7

- 1) भारत में जो किसान आंदोलन हुए, क्या उनके संगठन और सिद्धांत एक ही थे? अपना उत्तर तीन पंक्तियों में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

- 2) नीचे स्तंभ (क) में दिए अंशों को स्तंभ (ख) में दिए अंशों से मिलाइए :

क	ख
क) भूमि का समान वितरण	1) पर्यावरण में प्रदूषण
ख) किसानों की दीनहीन दशा	2) चीनी और यूरोपीय किसान आंदोलन
ग) समाज में आधारभूत परिवर्तन	3) तिभागा आंदोलन
घ) न्यूनतम सुविधाओं का अभाव	4) मोपला विद्रोह

- 3) शहरी वानिकी किसे कहते हैं? अपना उत्तर दो पंक्तियों में दीजिए।

.....

.....

25.8 सारांश

इस इकाई में पाठांश 25.2 में हमने सामान्य दृष्टि से भारत में भूमि के प्राकृतिक-भौगोलिक अभिलक्षणों की निरूपण किया। इसके बाद भूमि के उपयोग और उससे संबंधित पारिस्थितिक समस्याओं की चर्चा की गई है। यह बहुत बड़ा भाग है। इस भाग के तीन उपभाग हैं जिनमें चरागाह, बंजर भूमि और फसली भूमि के बारे में विवरण दिया गया है। इनमें से हर उपभाग आगे उपभागों में बाँटा गया है। इनमें उन विशिष्ट पारिस्थितिक समस्याओं पर ध्यान केंद्रित किया गया है जो लोगों को प्रभावित करती हैं। भारत चूँकि मुख्य रूप से कृषकों का देश है। यहाँ हमने विस्तार से लोगों द्वारा भूमि की सुलभता की प्रकृति तथा समाज के उच्च वर्गों द्वारा भूमि नियंत्रण तथा प्रबंधन के बारे में विचार किया है। हमने भूमि सुधार के लिए किए गए कानूनी उपायों और भूमि सुधार के परिणामों का विवरण भी दिया है।

एक छोटे से भाग में हमने शहरी क्षेत्रों में भूमि के इस्तेमाल के विन्यास की चर्चा की। अंत में, हमने ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में भूमि के नियंत्रण तथा प्रबंधन में लोगों की भागीदारी की बात की। इस इकाई के आधार पर भारत में संसाधनों के उपयोग को देखने के लिए आपको अपना दृष्टिकोण बनाना होगा। अगली दो इकाइयों में हम पानी और वन संसाधनों के बारे में विचार करेंगे।

25.9 शब्दावली

अकृष्य (Unculturable)	: खेती योग्य नहीं; और न ही विकासक्षम।
क्षारीय (Alkaline)	: संयंत्रों की राख से प्राप्त विलेप लवणों का मिश्रण जिसमें पोटेशियम अथवा सोडियम कार्बोनेट होता है। ये लवण कृषि के लिए हानिकारक मात्रा में अनुर्वर क्षेत्रों की मिट्टी की ऊपरी परत में पाये जाते हैं।
खड्ड (Gully)	: एक गहरी कृत्रिम कुल्या, परनाला, नाली/ पानी के बहाव से बनी मोरी/ गर्त/ दर्रा।
जलविज्ञान (Hydrology)	: पानी के गुण धर्म और नियमों से संबंधित विज्ञान।
तंगघाटी या बीहड़ (Ravine)	: गहरी तंग घाटी।
पारितंत्र/पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystem)	: प्राणिजात के स्वभाव, रहन-सहन का ढंग और अपने आसपास के वातावरण के साथ संबंधों का सम्मिश्र रूप।
प्रायद्वीप (Peninsula)	: भूमि का वह भाग जो तीन ओर या लगभग चारों ओर से पानी से घिरा हो या जो समुद्र में बहुत आगे बढ़ा हुआ हो।
भौतिक-भौगोलिक (Physiographic)	: प्रकृति के विवरण से संबंधित अथवा प्राकृतिक दृश्यघटना।
लवणता (Salinity)	: लवण या लवणों से संसिक्त/ सिक्त/ संतृप्त होने की गुणवत्ता।
सवाना (Savanna)	: उष्ण कटिबंधीय और उपोष्ण कटिबंधीय वन क्षेत्र में घास वाला मैदान जिसमें जहाँ-तहाँ पेड़ हों।
सुलभता (Access)	: किसी संसाधन विशेष को पाने अथवा प्रयोग करने हेतु स्वतंत्रता या सामर्थ्य।
सैलाबी मिट्टी (Alluvium)	: बाढ़ के बाद छूटी हुई मिट्टी, रेत आदि।
स्टैपी (Steppe)	: ऐसा समतल घास का मैदान जहाँ वन न हों।

25.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- 1) गंगा-सिंध क्षेत्र भारत के कुल भूभाग का एक-चौथाई है। इस भूभाग का क्षेत्रफल 65,200 वर्ग किलोमीटर है।

- 2) जिस क्षेत्र में पर्वत, पहाड़ और पठारों का एक खंड है और बीच-बीच में घाटियाँ हैं उसे मध्य भारत का पठार कहते हैं। यह भारत के कुल भूभाग के क्षेत्रफल का एक बड़ा हिस्सा है।
- 3) भूमि के उपयोग की दृष्टि से भारत के भूभाग को चार हिस्सों में बाँट सकते हैं। ये हैं – चरागाह क्षेत्र, बंजर या बेकार भूमि फसली भूमि और जंगल।
- 4) सवाना विस्तृत खुले घास वाले उन मैदानों के चरागाह को कहते हैं जिन पर यत्र-तत्र झाड़ियाँ और पेड़ उगे होते हैं, जबकि स्टेपीज़ उस विस्तृत समतल मैदान को कहते हैं जिस पर पेड़ नहीं होते। कभी-कभी पशुओं को बहुत ज़्यादा चराने से सवाना अविस्तरित होकर स्टेपीज़ जैसे लगने लगते हैं।

बोध प्रश्न 2

- 1) राजस्थान के ग्यारह पश्चिमी जिले, गुजरात के तीन जिले और हरियाणा में तीन जिले वायु के अपरदन से प्रभावित क्षेत्र हैं। भारत में कुल 129.30 लाख हैक्टेयर क्षेत्र वायु के अपरदन से प्रभावित है।
- 2) बीहड़ों से अपरदन का प्रभाव उपजाऊ पठार क्षेत्र पर होता है। इन भूभागों पर खेती करने वालों और वहाँ रहने वालों को उस क्षेत्र से दूर जाना पड़ता है। दूसरे, ये बीहड़ डाकुओं के गिरोहों के शरण-स्थल बन जाते हैं। इससे इस क्षेत्र के निकटवर्ती गाँवों के लोगों में असुरक्षा की भावना पैदा हो जाती है।
- 3) खानों में खुदाई के काम के बाद उस क्षेत्र में खेती करना संभव नहीं होता क्योंकि खनन की आरंभिक अवस्था में भूमि के ऊपर की सतह से वनस्पतियाँ और उपजाऊ मिट्टी हटा दी जाती है। भूगर्भ में खनन में खान से खनिज निकालने के बाद खान को छोड़ दिया जाता है। फलतः खान की भूमि बैठ जाती है और रहने, खेती करने या पशुओं को चराने के लिए असुरक्षित हो जाती है। खानों से खनिज निकालने के बाद उसमें उसकी जैविक सामर्थ्य खत्म हो जाती है। इससे उस क्षेत्र के मरुस्थल में परिवर्तित होने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है।

बोध प्रश्न 3

- 1) इसका मतलब यह है कि कृषि में उत्पादन की दर के अनुपात में पूँजी निवेश किया जा रहा है।
- 2) भारत में कृषि के उत्पादन में दो प्रकार से वृद्धि की जा सकती है – एक तो वर्तमान कृषि क्षेत्र का विस्तार करके, दूसरे प्रति एकड़ क्षेत्र में ज़्यादा उत्पादन करके।

बोध प्रश्न 4

- 1) सीमांत जोतें 1 हैक्टेयर से कम क्षेत्र की जाती हैं और छोटी जोतें 1 से 2 हैक्टेयर क्षेत्र नियंत्रित होते हैं।
- 2) पट्टेदारी और भूमि अधिकार दोनों केंद्रीय तथा प्रांतीय प्रशासन व्यवस्था द्वारा नियंत्रित होते हैं।
- 3) ब्रिटिश शासित भारत में भूमि नीति का उद्देश्य भू-कर से अधिक से अधिक राजस्व प्राप्त करना था।

- 4) ब्रिटिश शासन काल में भारत के विभिन्न भागों में विविध प्रकार के बंदोबस्त या भूमि व्यवस्थाओं ने काश्तकारों या किसानों के लिए गरीबी की स्थिति पैदा कर दी।
- 5) आर्थिक जोत की संकल्पना का अभिप्राय यह है कि काश्तकार के रहन-सहन का एक मानक स्तर बना रहे और उसके सामान्य आकार के परिवार के सदस्यों को पूर्ण रोजगार तथा कम से कम एक जोड़ी बैल उपलब्ध हों।

बोध प्रश्न 5

- 1) भारत में ज़मींदारी प्रथा अंग्रेज़ों ने आरंभ की।
- 2) आज़ादी के बार भूमि सुधार के आरंभिक वर्षों में काश्तकारों को तथा भूमिहीन लेकिन भूमि पर आश्रित अन्य वर्गों को पहले से अधिक सुरक्षा देने के लिए उस समय प्रचलित काश्तकारी के कानूनों में संशोधन किया गया। ज़मींदारों को इस बात का डर था कि कहीं उनका भूमि पर से स्वामित्व समाप्त न हो जाए।
- 3) कोई काश्तकार तभी कृषक भूस्वामी की हैसियत प्राप्त कर सकता था यदि उसने कुछ निर्धारित अवधि तक कृषि भूमि पर अधिकार बनाए रखा हो।
- 4) केवल कानून बनाकर भूमि सुधारों को प्रभावशाली ढंग से लागू करना संभव नहीं क्योंकि कानून बनने के बाद उसे लागू करने की ज़िम्मेदारी प्रशासन की होती है। कानूनों को लागू करने के लिए राजनैतिक इच्छा, सक्षम प्रशासन तंत्र और पर्याप्त संसाधनों का होना आवश्यक है। इसके अलावा, यह भी ज़रूरी है कि भूमि सुधार से लाभ पाने वाले लोग संगठित हों और अपने कानूनी अधिकारों की माँग करें तभी कानून को प्रभावी ढंग से लागू किया जा सकता है।
- 5) कृषि भूमि क्षेत्रों की चकबंदी के निम्नलिखित कारण हैं :
 - क) छोटी जोतें खेती के लिए अलाभकर होती हैं।
 - ख) एक खेत से दूसरे खेत में कृषि संबंधी कार्यों को करने में अधिक धन, अधिक समय तथा अधिक श्रम व्यर्थ खर्च होता है।
 - ग) खेती के कामों की देख-रेख में असुविधा होती है।
 - घ) सिंचाई और नाली व्यवस्था पर अधिक व्यय होता है।
 - ङ) फसल के समय एक खेत से दूसरे खेत में जाने में कठिनाई होती है तथा दूसरे के खेतों में से होकर जाने के कारण झगड़े होते हैं और तनाव पैदा होता है।
 - च) कृषि भूमि के विभाजन से सीमांकन में कृषि भूमि का नुकसान होता है।

बोध प्रश्न 6

- 1) कृषि मज़दूर की हैसियत दूसरों से ऊँची होती है क्योंकि उसे जो दैनिक मज़दूरी मिलती है वह कभी-कभी सीमांत कृषकों की अपनी भूमि से होने वाली आय से अधिक होती है।
- 2) मोटे तौर पर नकद मज़दूरी दर का मतलब मज़दूरी के तौर पर प्राप्त नकद पैसे से है, जबकि वास्तविक मज़दूरी दर का अभिप्राय पैसे की बाज़ार से सामान खरीदने की (क्रय) शक्ति से है।

बोध प्रश्न 7

- 1) भारत में कृषक आंदोलन स्थानीय आधार पर अलग-अलग उद्देश्यों और लक्ष्यों को लेकर संगठित किए जाते हैं। वे सब अपनी माँगें एक ही मंच से नहीं उठाते।
- 2) क) 3
ख) 4
ग) 2
घ) 1
- 3) शहरी वानिकी का मतलब शहरी क्षेत्रों के रोपण और उसकी देखभाल से है। यह कार्य वन विभाग के एक प्रभाग द्वारा किया जाता है।